मुद्रक

श्री रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, नसीराबाद रोड अजमेर ।

तन्दुल वेयालिय पइण्णं

श्री तन्दुल वैचारिक-प्रकीर्णकम्

(शुद्ध मूल पाठ, संस्कृत छाया और भावार्थ)

निज्जरिय जरामरणं, वंदित्ता जिणवरं महावीरं । वुच्छं पयण्णयमिणं, तंदुल वेयालियं नाम ॥१॥

छाया—निर्जरित जरा मरणं, वन्दित्वा जिनवरं महावीरं । वक्ष्ये प्रकीर्णक मिदं, तन्दुल वैचारिकं नाम ॥१॥

भावार्थ—जिन्होने बुढापा और मृत्यु को सर्वथा क्षय कर दिया है तथा जो राग द्वेष का विजय करने वाले सामान्य केवलियों में प्रधान हैं ऐसे श्री भगवान् महावीर स्वामी को मन, वचन और काया से वन्दना करके तन्दुल वैचारिक नामक इस प्रकीर्णक को मैं कहूँगा ॥१॥

सुणह गणिए दह दसा वास सयाउस्स जह विभज्जंति । संकलिए वोगसिए जं चाउं सेसयं होइ ॥२॥

छाया—शृणुत गणिते दश दशा, वर्ष शतायुषो यथा विभज्यन्ते । संकलिते व्युत्कृष्टे, यच्चायुष शेषकं भवति ॥२॥

भावार्थ—जिसकी आयु सौ वर्ष की है, हिसाब करने पर उस मनुष्य की जिस तरह दश अवस्थाएँ होती है तथा उन दश ही

अवस्थाओ को एकत्रित करके निकाल देने पर उस मनुष्य की जितनी आयु शेष बच जाती है उसका मैं वर्णन करूँगा, आप उसे सुने ॥२॥

जत्तिय मित्ते दिवसे, जत्तिय राई मुहुत्त मुस्सासे । गब्भंमि वसइ जीवो, आहारविहिं य वुच्छामि ॥३॥

छाया—यावन्मात्रान् दिवसान्, यावद्रात्री मुहूर्त्तोच्छ्वासान् । गर्भे वसति जीव', आहार विधिञ्च वक्ष्यामि ॥३॥

भावार्थ—यह जीव जितने दिन, रात, मुहूर्त्त और उच्छ्वास तक गर्भ मे निवास करता है तथा वहाँ वह जो आहार करता है यह सब विषय मैं बतलाऊँगा ॥३॥

दुण्णि अहोरत्त सए संपुण्णे, सत्तसत्तरिं चेव । गब्भंमि वसइ जीवो, अद्ध महोरत्त मण्णं च ॥४॥

छाया—द्वे ऽहोरात्रशते सम्पूर्णे, सप्तसप्ततिञ्चैव । गर्भे वसति जीवो ऽर्द्ध महोरात्र मन्यच्च ॥४॥

भावार्थ—यह जीव २७७॥ दो सौ साढे सतहत्तर दिन रात तक गर्भ मे निवास करता है ॥४॥

ए ए उ अहोरत्ता, णियमा जीवस्स गब्भवासंमि । हीणाहिया उ इत्तो उवघायवसेण जायंति ॥५॥

छाया—एते त्वहोरात्रा , नियमतो जीवस्य गर्भवासे । हीनाधिकास्त्वित उपघात वशेन जायन्ते ॥५॥

भावार्थ—२७७॥ दो सौ साढ़े सतहत्तर दिन रात तो निश्चय ही गर्भवास मे लग जाते हैं परन्तु वात पित्तादि दोषो के उत्पन्न होने पर इन से कम या अधिक अहोरात्र भी कभी कभी गर्भवास मे गुजर जाते हैं ॥५॥

अट्ठ सहस्सा तिण्णि उ, सया मुहुत्ताण पण्णवीसा य । गब्भगओ वसइ जीओ, णियमा हीणाहिया इत्तो ॥६॥

छाया—अष्टौ सहस्राणि त्रीणि तु, शतानि मुहूर्त्तानां पञ्चविंशतिं च। गर्भगतो वसति जीवः, नियमाद् हीनाधिकानीत ॥६॥

भावार्थ—जीव आठ हजार तीन सौ पचीस मुहूर्त्त तक निश्चय ही गर्भ मे निवास करता है, परन्तु वात आदि के प्रकोप से कम या ज्यादा भी हो सकता है। पहले २७७॥ दो सौ साढे सत्तहतर अहोरात्र तक गर्भ मे निवास का काल कहा गया है। एक अहोरात्र के ३० मुहूर्त्त होते हैं, इसलिये २७७॥ अहोरात्र को ३० से गुणन करने पर ८३२५ संख्या होती है, यही मुहूर्त्तों की संख्या जाननी चाहिये ॥६॥

तिण्णेव य कोडीओ, चउदस हवंति सयसहस्साइं। दस चेव सहस्साइं, दुण्णि सया पण्णवीसा य ॥७॥
उस्सासा निस्सासा, इत्तियमित्ता हवंति संकलिया। जीवस्स गब्भवासे, णियमा हीणाहिया इत्तो ॥८॥

छाया—तिस्रश्च कोटयश्चतुर्दश भवन्ति शतसहस्राणि। दश चैव सहस्राणि, द्वे शते पञ्चविंशतिश्च ॥७॥
उच्छ्वासा निश्वासा, एतावन्मात्रा भवन्ति सङ्कलिता। जीवस्य गर्भवासे, नियमाद् हीनाधिका इतः ॥८॥

भावार्थ—तीन कोटि चौदह लाख दश हजार दो सौ पचीस ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वास तक निश्चय जीव गर्भ में निवास करता है परन्तु वात आदि के दोष से कम ज्यादा होना भी सम्भव है। आशय यह है कि-एक मुहूर्त्त मे ३७७३ उच्छ्वास निःश्वास होते हैं। इसलिये गर्भवास काल के ८३२५ मुहूर्तों का ३७७३ से गुणन करने पर ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वासों की संख्या होती है। इसलिये ३१४१०२२५ उच्छ्वास निःश्वास तक जीव का गर्भ मे निवास कहा गया है ॥७॥८॥

आउसो ! इत्थीए नाभिहिट्ठा, सिरादुगं पुप्फणालियागारं । तस्स य हिट्ठा जोणी, अहोमुहा संठिया कोसा ॥९॥

छाया—आयुष्मन् ! स्त्रिया नाभेरधः, शिराद्विकं पुष्पनालिकाकारम् । तस्य चाधो योनिः, अधोमुखा संस्थिता कोशा ॥९॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् गौतम ! स्त्री की नाभि के नीचे फूल की डंडी के समान आकार वाली दो नाडियाँ होती हैं । उन नाडियों के नीचले भाग में योनि होती है । उस योनि का मुख नीचे की ओर होता है और वह तलवार के म्यान के समान होती है ॥९॥

तस्स य हिट्ठा चूयस्स, मंजरी (जारिसी) तारिसा उ मंसस्स । ते रिउकाले फुडिया, सोणियलवया विमोयंति ॥१०॥

छाया—तस्याश्चाधः चूतस्य, मञ्जर्यो (यादृश्यः) तादृश्यस्तु मांसस्य । ता ऋतुकाले स्फुटिताः, शोणित लवकान् विमुञ्चन्ति ॥१०॥

भावार्थ—उस योनि के नीचे आम की मञ्जरी के समान मांस की मञ्जरी होती है, वह मञ्जरी ऋतुकाल मे फूट जाती है, इसलिये उससे रक्त बिन्दु का पतन होता है ॥१०॥

कोसायारं जोणिं संपत्ता, सुक्कमीसिया जइया । तइया जीवुववाए, जुग्गा भणिया जिणिंदेहिं ॥११॥

छाया—कोशाकारां योनिं सम्प्राप्ताः शुक्रमिश्रिताः यदा । तदा जीवोत्पादे, योग्या भणिता जिनेन्द्रैः ॥११॥

भावार्थ—वे रुधिरबिन्दु पुरुष के संयोग से शुक्रमिश्रित होकर जब कोश के समान आकार वाली स्त्री की योनि में प्रवेश करते हैं, तब वह स्त्री जीव के उत्पन्न करने योग्य होती है, यह जिनवरों ने कहा है ॥११॥

बारस चेव मुहुत्ता, उवरिं विद्धंस गच्छई सा उ । जीवाणं परिसंखा, लक्खपुहुत्तं य उक्कोसं ॥१२॥

९९००००० निव्वत्तेइ विणा केसमंसुणा, सहकेसमंसुणा अद्धुट्ठाओ रोम कूवकोडीओ ३५०००००० निव्वत्तेइ। अट्ठमे मासे वित्तीकप्पो हवइ॥ सूत्रं ॥२॥

छाया—तत्प्रथमे मासे कर्षोनं पलं जायते। द्वितीये मासे पेशी सञ्जायते घना। तृतीये मासे मातुर्दोहदं जनयति। चतुर्थे मासे मातुरङ्गानि प्रीणयति। पञ्च पिण्डिका पाणी पादौ शिरश्चैव निर्वर्तयति। षष्ठे मासे पित्तशोणित मुपचिनोति। सप्तमे मासे सप्तशिराशतानि पञ्च पेशीशतानि नव धमनीः नवनवतिञ्च रोमकूपशत सहस्राणि निर्वर्तयति विना केश श्मश्रुभिः। सह केशश्मश्रुभि सार्द्धाः रोमकूपकोटीः निर्वर्तयति, अष्टमे मासे निष्पन्नप्राणो भवति।

भावार्थ—वह शुक्र और शोणित दिनोदिन बदलता हुआ प्रथम मास में एक कर्ष कम एक पल का होजाता है। पाँच गुञ्जा का एक मासा होता है और सोलह मासा का एक कर्ष होता है एवं चार कर्ष का एक पल होता है। इस प्रकार वह शुक्र शोणित प्रथम मास मे तीन कर्ष का होता है यह जानना चाहिये। दूसरे मास मे वह मांसपिण्ड बन कर घन और समचतुरस्र हो जाता है। तीसरे मास में वह माता को दोहद उत्पन्न करता है। चौथे मास मे वह माता के अङ्गों को पुष्ट करता है। पाचवें मास मे दो हाथ दो पैर और शिर उत्पन्न होते हैं। छठे मास मे पित्त और रक्त पुष्ट होता है। सातवें मास में ७०० नसें, ५०० पेशी और नौ धमनी उत्पन्न होती हैं तथा शिर के बाल और दाढी मूँछ के रोम कूपो को छोड़कर ९९००००० रोम कूप उत्पन्न होते हैं। यदि शिर के बाल और दाढी मूँछ के कूपों को शामिल करलें तो साढे तीन कोटि रोमकूप उत्पन्न होते हैं। आठवें मास मे वह गर्भ प्रायः पूर्ण होजाता है। ॥ सूत्र २ ॥

छाया—द्वादश चैव मुहूर्तान्, उपरि विध्वसं गच्छति सा तु। जीवानां परिसंख्या, लक्षपृथक्त्वं चोत्कृष्टम् ॥१२॥

भावार्थ—पुरुष के वीर्य से संयुक्त स्त्री की योनि बारह मुहूर्त तक ही अध्वंस्त यानी गर्भ धारण करने योग्य रहती है, उसके बाद यानी बारह मुहुर्त के पश्चात् उसको गर्भ धारण की योग्यता नष्ट हो जाती है। स्त्री के गर्भ मे गर्भज जन्तुओ की संख्या दो लाख से लेकर नौ लाख तक की कही गई है॥१२॥

पणपणाय परेणं, जोणी पमिलायए महिलियाणं। पणसत्तरिइ परओ, पाएण पुमं भवेऽबीओ ॥१३॥

छाया—पञ्चपञ्चाशद्भ्यः, परेण योनिः प्रम्लायते महिलानाम्। पञ्चसप्ततिभ्य परतः, प्रायेण पुमान् भवदेवीर्यः ॥१३॥

भावार्थ—५५ वर्प के बाद स्त्री की योनि गर्भधारण करने योग्य नहीं रहती है तथा ७५ वर्प के बाद पुरुष भी वीर्य हीन हो जाता है ॥१३॥

वास सयाउय मेयं, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ। तस्सद्धे अमिलाया, सव्वाउय वीसभागो य ॥१४॥

छाया—वर्पशतायुष्क मेतद्, परेण या भवति पूर्व कोटिः। तस्यार्द्धे अम्लाना, सर्वायुर्विंशति भागश्च ॥१४॥

भावार्थ—पूर्व की गाथा मे जो कहा गया है कि–५५ वर्प के बाद स्त्री की योनि गर्भ धारण करने के योग्य नहीं रहती है और पुरुप भी ७५ वर्प के बाद वीर्य्य हीन हो जाता है यह बात आजकल के सौ वर्प की आयु के हिसाब से समझनी चाहिये। सौ वर्प से अधिक जिनकी आयु है उन प्राणियों के विपय मे पूर्वोक्त नियम नहीं है किन्तु उनकी आयु के आधे समय तक स्त्री की योनि गर्भ धारण करने योग्य रहती है और पुरुप अपनी आयु के बीसवे भाग में वीर्य्य हीन होता है यह जानना चाहिये ॥१४॥

छाया—जीवो गर्भगतः सन् किमाहार माहारयति ? गोतम ! या तस्य माता नानाविधा नवरसविकृतीः तिक्तकटु कषायाम्ल मधुराणि द्रव्याणि आहारयति तत एक देशेन ओज आहारयति। तस्य फलन्वृत सदृशी उत्पलनालोपमा भवति नाभिरसहरणी जनन्याः सदा नाभ्या प्रतिबद्धा नाभ्या तया गर्भ. ओज आदत्ते। भुञ्जानाया ओजसा तस्यां गर्भो विवर्धते यावाज्जात इति ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! गर्भ का जीव क्या आहार खाता है ? हे गौतम ! गर्भधारण करनेवाली माता जो दूध आदि रसीले पदार्थ तथा तिक्त, कटु, कसैले, खट्टे और मीठे पदार्थों का आहार करती है उसके अंशभूत शुक्र और शोणित समूह को अथवा माता के आहार से मिले हुए शोणित को वह गर्भ भक्षण करता है। उस गर्भ का नाभिनाल फल की डंडी और कमल की नाल के समान होता है। वह नाभि नाल माता की नाभि से सदा ही जुड़ा हुआ रहता है। उस नाल के द्वारा ही वह गर्भ ओज आहार को ग्रहण करता है। जब उसकी माता आहार खाने लगती है तब वह गर्भ भी माता के आहार से मिले हुए शुक्र और शोणित रूप ओज आहार को ग्रहण करके वृद्धि को प्राप्त होता है और वृद्धि को प्राप्त होकर जन्म लेता है ॥ ५ ॥

कइणं भंते ! माउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ माउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—मंसे, सोणिए, मत्थुलुंगे। कइणं भंते पिउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ पिउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठि अट्ठि मिंजा, केस मंसुरोम नहा ॥ सूत्रं ६ ॥

छाया—कति भदन्ता ! मातुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि मातुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा मांसं, शोणितं मस्तुलुंग। कति भदन्त ! पितुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि पितुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—अस्थि, अस्थिमिज्जा, केशश्मश्रु रोमनखा ॥ ६ ॥

जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारेइ वा पासवणेइ वा खेलेइ वा सिंघाणेइ वा वंतेइ वा पित्तेइ वा सुक्केइ वा सोणिएइ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा । गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे जं आहारं आहारेइ तं चिणाइ सोइंदियत्ताए चक्खुरिंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए जिब्भिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए अट्ठिअट्ठिमिंजकेसमंसुरोमनहत्ताए । से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा ॥ सूत्रं ३ ॥

छाया—जीवस्य भदन्त ! गर्भगतस्य सतोऽस्ति उच्चारो वा प्रश्रवणं वा खेलो वा सिघानो वा वान्तं वा पित्तं वा शुक्रं वा शोणितं वा ? नायमर्थः समर्थः । तत्केनार्थेन भदन्त एव । मुच्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो वा यावत् प्रश्रवणं वा ? गौतम ! जीवः गर्भगत सन् यमाहार-माहारयति स चिनोति श्रोत्रेन्द्रियतया चक्षुरिन्द्रियतया घ्राणेन्द्रियतया जिह्वेन्द्रियतया स्पर्शेन्द्रियतया अस्थ्यस्थि मज्जा केशश्मश्रु रोमनख तया । तद् एतेनार्थेन गौतम ! एव मुच्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो यावत्शोणितं वा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे भगवन् ! गर्भवासी जीव मल मूत्र करता है या नहीं ? तथा उसके खंखार, नाक का मल, वमन, पित्त, वीर्य्य और रक्त होते हैं या नहीं ? हे गौतम ! ये सब गर्भवासी जीव के नहीं होते । हे भगवन् ! क्यों नहीं होते ? हे गौतम ! गर्भगत जीव जो आहार करता है वह आहार श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शेन्द्रिय तथा हड्डी, मज्जा, केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम और नखरूप में परिणत हो जाता है । इसलिए गर्भगत जीव के पूर्वोक्त विष्ठा आदि नहीं होते हैं ॥ ३ ॥

पर्याप्तः पूर्वभविक वैक्रियलब्धिकः पूर्वभविकावधिज्ञान लब्धिकस्तथारूपस्य श्रमणस्य माहनस्य वा अन्तिक एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचन श्रुत्वा निशम्य ततः स भवति तीव्रसंवेगसञ्जातश्रद्धः तीव्रधर्मानुरागरक्तः। स जीवो धर्मकामुकः पुण्यकामुकः स्वर्गकामुकः मोक्षकामुकः धर्मकाङ्क्षितः पुण्यकाङ्क्षितः स्वर्गकाङ्क्षितः मोक्षकाङ्क्षितः धर्मपिपासितः पुण्यपिपासितः स्वर्गपिपासितः, मोक्षपिपासितः तच्चित्तः तन्मनाः तल्लेश्यः तदध्यवसितः तत्तीव्राध्यवसायः तदर्पितकरणः तदर्थोपयुक्तः, तद्भावनाभावितः एतस्मिन्नन्तरे कालं कुर्यात् तदा देवलोकेषूत्पद्यते। अथैतेनार्थेन हे गौतम ! एवमुच्यते अस्त्येकक उत्पद्यते, अस्त्येकको नोत्पद्यते।

भावार्थ—हे भगवन् ! क्या गर्भवासी जीव मर कर देवलोक में उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि—कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है ? हे गौतम ! जो जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय है और समस्त पर्य्याप्तियों से पूर्ण हो गया है वह पूर्व भव की वैक्रियलब्धि तथा अवधिज्ञानलब्धि के द्वारा तथारूप के श्रमण माहन के निकट एक भी आर्य्य धार्मिक सुन्दर वचन को सुनकर उसके प्रभाव से धर्म का श्रद्धालु हो जाता है और सांसारिक लाखो दुःखो को जानकर उनसे विरक्त हो जाता है। धर्म में तीव्र अनुराग होने से वह उस रङ्ग में रञ्जित हो जाता है। वह जीव धर्म की इच्छा करता है, वह पुण्य की इच्छा करता है। वह स्वर्ग तथा मोक्ष की इच्छा करता है। वह धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष मे आसक्त हो जाता है एव धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष में उसकी तृप्ति नहीं होती है। उसका मन धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष में लगा रहता है एवं इन्हीं विषयों का वह विशेष उपयोग रखता है तथा इन्हीं विषयो के सम्पादन करने का उसका अध्यवसाय होता है। वह तीव्र रूप से इनके लिये प्रयत्न करता है वह इन्हीं विषयों में सदा उपयोग रखता है, वह इन्हीं में अपनी इन्द्रियों को अर्पण कर देता है एवं इनकी भावना से ही वह सदा रञ्जित रहता

भावार्थ—हे भगवन् ! बालक के कितने अङ्ग माता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं ? हे गौतम ! बालक के तीन अङ्ग माता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं जैसे कि—मांस, रक्त और मस्तिष्क। कोई कोई मेद और फिप्फिस आदि को मस्तुलुंग कहते हैं, मस्तिष्क को नहीं। हे भगवन। बालक के कितने अङ्ग पिता के अंश शुक्र से उत्पन्न माने जाते हैं ? हे गौतम ! तीन अङ्ग पिता के अंश से उत्पन्न माने जाते हैं। जैसे कि—हड्डी और हड्डी के मध्य मे रहने वाली मज्जा एव शिर के बाल, दाढी, मूंछ, रोम और नख। बाकी के अङ्ग सब माता और पिता दोनो के अश से मिश्रित माने जाते हैं ॥ ६ ॥

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जिज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा। से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ-जीवेणं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जिज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा। गोयमा ! जेणं जीवे गब्भगए समाणे सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए विभंगणाणलद्धीए विउव्वियलद्धीए विउव्वियलद्धीपत्ते पराणीयं आगयं सुच्चा णिसम्म पएसे निच्छुहइ निच्छुहित्ता विउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता चाउरंगिणीं सिएणं सण्णाहेइ सण्णाहित्ता पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ, सेणं जीवे अत्थकामए रज्जकामए भोगकामए कामकामए, अत्थकंखिए रज्जकंखिए भोगकंखिए कामकंखिए अत्थपिवासिए भोग रज्जकाम पिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तयज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तयट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणा भाविए एयंसि च णं (चे) अंतरंसि कालं करिज्जा णेरइएसु उववज्जिज्जा। से एएणं अट्ठेणं एवं वुच्चइ जीवेणं गब्भगए समाणे णेरइएसु अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा गोयमा ! ॥ सूत्रम् ७ ॥

है। ऐसे समय में मृत्यु को प्राप्त हो कर वह जीव देवलोक में उत्पन्न होता है इसी कारण मैंने यह कहा है कि– हे गौतम ! कोई गर्भगत जीव स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है ॥८॥

जीवेणं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुज्जए वा अच्छिज्ज वा चिट्ठिज्ज वा निसीज्ज वा तुयट्टिज्ज वा आसइज्ज वा माउए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहियाए सुहिओ हवइ दुहियाए दुहिओ (दुक्खिओ) हवइ ? हंता गोयमा ! जीवेणं गब्भगए समाणे उताणए वा जाव दुहिओ (दुक्खिओ) हवइ ॥ सूत्र ९ ॥

छाया—जीवो भदन्त ! गर्भगतः सन् उत्तानको वा पार्श्वशायी वा आम्रकुब्जको वा आसीत वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा त्वग्वर्तयेद्वा आश्रयति वा शयीत वा मातरि शयानायां शेते जाग्रत्यां जागर्ति वा सुखितायां सुखितो भवति दु खितायां दु खितो भवति ? हन्त ! गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् उत्तानको वा यावत् दु खितो भवति ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! गर्भ मे रहा हुआ जीव कभी उत्तान होकर रहता है या नहीं तथा वह कभी बगल से सोकर रहता है या नहीं एव वह कभी आम्रफल की तरह झुककर रहता है या नहीं ? वह कभी बैठता है या नहीं ? कभी लेटता है या नहीं तथा वह कभी करवटें बदलता है या नहीं ? वह गर्भ के मध्यप्रदेश मे आता है या नहीं ? वह कभी सोता है या नहीं ? वह माता के शयन करने पर सोता है या नहीं तथा उसके जागने पर जागता है या नहीं ? वह माता के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है या नहीं ? उत्तर—हाँ, गौतम ! गर्भगत जीव ये पूर्वोक्त सभी बातें करता है।

थिरजांय विहु रक्खइ, सम्मं सारक्खई तओ जणणी। संवाहई तुयट्टइ, रक्खइ अप्पंय गब्भं य ॥ १८ ॥

छाया—स्थिरजातमपि रक्षति, सम्यक संरक्षति ततो जननी । संवहति त्वग्वर्तयति रक्षत्यात्मानञ्च गर्भञ्च ॥१८॥

भावार्थ—जब गर्भ स्थिर होजाता है तब माता उसकी रक्षा करती है। वह उसकी रक्षा के लिये विशेष प्रयत्न करती है। वह उसे लेकर जाती आती है, उसे सुलाती है और आहार खिलाकर अपनी तथा गर्भ की भी रक्षा करती है।

अणुसुयइ सुयंतीए, जागरमाणीए जागरइ गब्भो । सुहियाए होइ सुहिओ, दुहियाए दुहिओ होइ ॥१९॥

छाया—अनुशेते शयानायां, जाग्रत्यां जागर्ति गर्भः । सुखितायां भवति सुखितः, दुःखितायां दुःखितो भवति ॥१९॥

भावार्थ—जब माता सोती है तब गर्भ भी सोता है और माता के जागने पर वह भी जागता रहता है। जब माता दुःखित होती है तब गर्भ भी दुःखित होता है और जब वह सुखी होती है तब गर्भ भी सुखी रहता है ॥१९॥

उच्चारे पासवणे खेलं, सिंघाणओ वि से णत्थि । अट्ठीट्ठी मिंज्जणह, केस मंसु रोमेसु परिणामो ॥२०॥

छाया—उच्चारः प्रश्रवणं खेलो, सिंघानकोऽपि तस्य नास्ति । अस्थ्यस्थि मज्जा नखकेशश्मश्रु रोमसु परिणाम. ॥२०॥

भावार्थ—उस गर्भ के जीव मे मल मूत्र थूक नाक का मल नहीं होते हैं। वह जो आहार करता है वह हड्डी, हड्डी की मज्जा, नख, केश, दाढी मूँछ और रोम के रूप मे परिणत हो जाता है ॥२०॥

एवं बुंदिमइगओ, गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो । परम तमिसंधयारे, अमिज्झभरिए पएसम्मि ॥२१॥

छाया—एवं शरीर मतिगतो, गर्भे संवसति दुःखितो जीवः परमतमिस्रान्धकारे अमेध्यभूते प्रदेशे ॥२१॥

भावार्थ—इस प्रकार शरीर को प्राप्त होकर जीव गर्भ मे बहुत कष्ट के साथ निवास करता है। गर्भ में घोर अन्धकार रहता है और वह अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ होता है।

आउसो ! तओ नवमे मासे तीए वा पडुपएणे वा अणागए वा चउएहं माया अएणयरं पयायइ। तंजहा—इत्थिं वा इत्थिरूवेणं। पुरिसं वा पुरिसरूवेणं। नपुंसगं वा नपुंसगरूवेणं। बिंबं वा बिंबरूवेणं॥ सूत्रं १०॥

छाया—आयुष्मन् ! ततो नवमे मासेऽतीते वा प्रत्युत्पन्ने वा अनागते वा चतुर्णां माता अन्यतरं प्रजायते तद् यथा—स्त्रियं वा स्त्रीरूपेण, पुरुषं वा पुरुष रूपेण, नपुंसकं वा नपुंसक रूपेण, बिम्बं वा बिम्बरूपेण।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! आठ मास के पश्चात् जब नवम मास व्यतीत होजाता है अथवा जब वर्तमान रहता है अथवा जब आने वाला होता है तब माता चार मे से किसी एक को उत्पन्न करती है। जैसे कि—स्त्री के रूप मे स्त्री को, अथवा पुरुष के रूप में पुरुष को अथवा नपुंसक के रूप मे नपुंसक को अथवा मास पिण्ड के रूप में मांस पिण्ड को।

अप्पं सुक्कं बहु उउयं, इत्थी तत्थ जायइ। अप्पं उयं बहुं सुक्कं पुरिसो तत्थ जायइ ॥२२॥

छाया—अल्पं शुक्रं बहु आर्तवं, स्त्री तत्र जायते। अल्पमार्तवं बहु शुक्रं पुरुषस्तत्र जायते ॥२२॥

भावार्थ—जब स्त्री का आर्तव यानी रक्त अधिक और पुरुष का वीर्य्य अल्प होता है तब स्त्री की उत्पत्ति होती है और जब

स्त्री का रक्त अल्प और पुरुष का वीर्य अधिक होता है तब पुरुष की उत्पत्ति होती है।

दुण्हं वि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे नपुंसगो। इत्थिउयसमाओगे, बिंबं तत्थ जायइ ॥२३॥

छाया—द्वयोरपि रक्त शुक्रयोः, तुल्यभावे नपुंसकः। स्त्र्योजः समायोगे बिम्बं तत्र जायते।

भावार्थ—जब शुक्र और शोणित दोनों ही बराबर होते हैं तब नपुंसक उत्पन्न होता है तथा जब स्त्री का रक्त वायु के कारण जम जाता है तब बिम्ब यानी मांस के पिण्ड की तरह बिम्ब उत्पन्न होता है।

अह णं पसवणकाल समयंसि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ समागच्छइ तिरियमागच्छइ विणिग्घाय मावज्जइ ॥सूत्रं ११॥

छाया—अथ प्रसवकालसमये शीर्षेण वा पादाभ्यां वा आगच्छति समागच्छति तिर्यगागच्छति विनिघात मापद्यते।

भावार्थ—जो जीव प्रसव के समय शिर से या पैरों से निकलता है वह बिना बाधा के निकल जाता है परन्तु जो तिरछा होकर निकलता है वह मर जाता है।

कोई पुण पावकारी, बारस संवच्छराइं उक्कोसं। अच्छइ उ गब्भवासे, असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥२४॥

छाया—कोऽपि पुनः पापकारी, द्वादशसंवत्सराणि उत्कृष्टं। तिष्ठति तु गर्भवासे, अशुचिप्रभवेऽशुचिके ॥२४॥

भावार्थ—जिसमें अशुचि उत्पन्न होती है और जो अशुचिरूप है ऐसे गर्भ में कोई पापी जीव उत्कृष्ट बारह वर्ष तक निवास करता है।

जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो। तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ णाप्पणो ॥२५॥

छाया—जायमानस्य यद्दुःख, म्रियमाणस्य वा पुनः। तेन दु खेन संमूढो, जातिं स्मरति नात्मनः ॥२५॥

भावार्थ—गर्भ से बाहर निकलते समय तथा मरण के समय प्राणी को जो दुःख होता है उससे मूढ बना हुआ प्राणी अपने पूर्व जन्म को स्मरण नहीं कर सकता है।

वीसरसरं रसंतो जो सो, जोणी मुहाओ निप्फिडइ। माऊए अप्पणोऽवि य वेयणमउलं जणेमाणो ॥२६॥

छाया—विस्वरस्वरं रसन् यः स, योनिमुखान्निष्क्रामति। मातुरात्मनश्च वेदनामतुलां जनयन् ॥२६॥

भावार्थ—करुणाजनक शब्दों मे रुदन करता हुआ जीव योनिद्वार से बाहर निकलता है। वह माता को अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करता है तथा स्वयं भी पीडा अनुभव करता है।

गब्भघरयम्मि जीवो, कुंभीपागम्मि णरयसंकासे। वुत्थो अमिज्झमज्झे, असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥२७॥

छाया—गर्भगृहे जीवः, कुम्भीपाके नरकसकाशे। स्थितोऽमेध्यमध्ये, अशुचिप्रभवे अशुचिके ॥२७॥

भावार्थ—गर्भ रूप गृह कुम्भीपाक नरक के समान है। वह स्वयं अशुचि है और अशुचि को ही उत्पन्न करता है। उसमें जीव अपवित्र पदार्थों के मध्य मे निवास करता है।

पित्तस्स य सिंभस्स य, सुक्कस्स य सोणियस्स चि य मज्झे । मुत्तस्स पुरीसस्स य, जायइ जह वच्चकिमिउव्व ॥२८॥

छाया—पित्तस्य च श्लेष्मणश्च, शुक्रस्य च शोणितस्य च मध्ये । मूत्रस्य च पुरीपस्य च, जायते वर्चस्वकृमिरिव ॥२८॥

भावार्थ—जैसे उदर में स्थित विष्ठा में कीड़े उत्पन्न होते हैं उसी तरह यह जीव पित्त, कफ, शुक्र, शोणित, मूत्र और विष्ठा के मध्य मे उत्पन्न होता है।

तं दाणिं सोयकरणं, केरिसयं होइ तस्स जीवस्स । सुक्करुहिरागराओ जस्सुप्पत्ती सरीरस्स ॥२९॥

छाया—तदिदानी शौच करणं, कीदृश भवति तस्य जीवस्य । शुक्र रुधिराकरात् यस्योत्पत्ति· शरीरस्य ॥२९॥

भावार्थ—जिसकी उत्पत्ति शुक्र और रक्त के भण्डार से हुई है उस शरीर की शुद्धि किस तरह की जा सकती है ?

एयारिसे सरीरे, कलमलभरिए अमिज्झ संभूए । णिययं विगणिज्जंतं, सोयमयं केरिसं तस्स ॥३०॥

छाया—एतादृशे शरीरे, कलमलभृते अमेध्य संभूते । निजके जुगुप्सनीये शौचमदं कीदृश तस्य ॥३०॥

भावार्थ—यह शरीर मल से परिपूर्ण है और अपवित्र पदार्थों से उत्पन्न हुआ है। इसमे खुद अपने को और दूसरे को भी घृणा उत्पन्न होती है फिर इसके शुद्ध होने का गर्व करना कैसा ?।

आउसो ! एवं जायस्स जंतुस्स कमेण दस दसा एवमाहिज्जंति । तंजहा—

बाला, किड्डा, मंदा, बला य पण्णा य हायणि पवंचा । पब्भारा मुम्मुही, सायणी दसमा य कालदसा ॥३१॥

छाया—आयुष्मन् ! एवं जातस्य जन्तोः क्रमेण दश दशाः एवमाख्यायन्ते । तद्यथाः—

बाला, क्रीडा, मन्दा, बला च प्रज्ञा, हापनी, प्रपञ्चा । प्राग्भारा, मुन्मुखी, शायिनी दशमी च कालदशा ॥३१॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! पहले कहे अनुसार गर्भ से उत्पन्न जीव की क्रमश दश दशाएं होती है उनके नाम ये हैं— (१) बाला (२) क्रीडा (३) मन्दा (४) बला (५) प्रज्ञा (६) हापनी (७) प्रपञ्चा (८) प्राग्भारा (९) मुन्मुखी (१०) और शायिनी । ये प्रत्येक दशाएं दश दश वर्ष की होती हैं ।

जायमित्तस्स जंतुस्य, जा सा पढमिया दसा । न तत्थ सुहं दुक्खं वा, न हु जाणंति बालया ॥ ३२ ॥

छाया—जातमात्रस्य जन्तोर्यासा प्राथमिकी दशा । न तत्र सुखं दुःख वा, न हि जानन्ति बालकाः ॥३२॥

भावार्थ—उत्पन्न होने के समय से लेकर दश वर्ष पर्यन्त जो जीव की पहली दशा होती है उसमे बालक अपने तथा दूसरे के सुख दु.ख को नहीं जानते हैं । परन्तु जातिस्मरण ज्ञान जिनको होता है वे जानते हैं ।

बीईयं य दसं पत्तो, णाणा कीलाहिं कीडइ । ण य से काम भोगेसु, तिव्वा उप्पज्जई रई ॥३३॥

छाया—द्वितीयाञ्च दशां प्राप्तो, नानाक्रीडाभिः क्रीडति । न च तस्य काम भोगेषु, तीव्रोत्पद्यते रतिः ॥३३॥

भावार्थ—जीव जब दुसरी अवस्था को प्राप्त होता है तब नाना प्रकार की क्रीड़ाओ मे आसक्त होकर क्रीड़ा करता है । उस समय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द रूप विषयों के भोग की इच्छा उसकी तीव्र नहीं होती है ।

तइयं य दसं पत्तो, पंच काम गुणे णरो । समत्थो भुंजिउं भोए, जइ से अत्थि घरे धुवा ॥३४॥

छाया—तृतीयाञ्च दशां प्राप्तः, पञ्च कामगुणान्नरः । समर्थो भोक्तुं भोगान्, यदि तस्यास्ति गृहे ध्रुवा ॥३४॥

भावार्थ—तृतीय अवस्था को प्राप्त होकर जीव रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पॉच ही विषयों मे आसक्त होता है और वह इन्हें भोग सकता है यदि उसके घर में समृद्धि विद्यमान हो ।

चउत्थी उ बला णाम, जं णरो दसमस्सिओ । समत्थो बलं दरिसेउं, जइ भवे निरुवद्दवो ॥३५॥

छाया—चतुर्थी तु बला नाम, यां नरो दशा माश्रित । समर्थो बलं दर्शयितुं, यदि भवेन्निरुपद्रवः ॥३५॥

भावार्थ—चौथी दशा का का नाम बला है, उसको प्राप्त होकर जीव अपना बल दूसरे को दिखा सकता है, यदि वह नीरोग हो ।

पंचमी उ दसं पत्तो, आणुपुव्वीए जो णरो । समत्थोऽत्थं विचिंतेउं, कुडुबं चाभिगच्छइ ॥३६॥

छाया—पञ्चमीं तु दशां प्राप्तः, आनुपूर्व्या यो नरः । समर्थोऽर्थं विचिन्तयितुं, कुटुम्बञ्चाभिगच्छति ॥३६॥

भावार्थ—मनुष्य पाचवी दशा को प्राप्त होकर द्रव्य की चिन्ता करता है और कुटुम्ब की चिन्ता मे निमग्न होता है ।

छट्ठी उ हापणी णामा, जं णरो दसमस्सिओ । विरज्जइ उ कामेसुं, इंदिएसु य हायइ ॥३७॥

छाया—षष्ठी तु हापनी नाम्नीं, यां नरो दशामाश्रित । विरज्यते च कामेषु, इन्द्रियेषु च हीयते ।

भावार्थ—छठी दशा का नाम हापनी है । इस दशा को प्राप्त होकर मनुष्य विषय भोग से विरक्त हो जाता है और उसकी इन्द्रियॉ भी बलहीन हो जाती हैं ।

सत्तमी य पवंचा उ, जं नरो दसमस्सिओ । निच्छुभइ चिक्कणं खेलं, खासई य खणे खणे ॥३८॥

छाया—सप्तमी च प्रपञ्चा तु, या नरो दशा माश्रितः । निक्षिपति चिक्कणं श्लेष्माणं, कासते च क्षणे क्षणे ॥३८॥

भावार्थ—सातवीं दशा प्रपञ्चा कहलाती है। इसके आने पर मनुष्य चिकना कफ मुख से बाहर फेंकता रहता है और क्षण क्षण में खासता रहता है।

संकुइयवली चम्मो, संपत्तो अट्ठमी दसं । नारीणं य अणिट्ठो य, जराए परिणामिओ ॥३९॥

छाया—सङ्कुचित वलिचर्मा, सम्प्राप्तोऽष्टमीं दशां । नारीणाञ्चानिष्टश्च, जरया परिणामितः ॥३९॥

भावार्थ—यह मनुष्य जब आठवीं दशा को प्राप्त होता है तब उसके शरीर का चमड़ा सङ्कुचित हो जाता है और अत्यन्त वृद्धता को प्राप्त होकर स्त्रियों का अप्रिय होजाता है।

नवमी मुम्मुही नाम, जं नरो दसमस्सिओ । जराघरे विणस्संते, जीवो वसइ अकामओ ॥४०॥

छाया—नवमी मुन्मुखी नाम्नी, या नरो दशा माश्रितः । जरागृहे विनश्यति, जीवो वसत्यकामतः ॥४०॥

भावार्थ—नवमी दशा का नाम मुन्मुखी है। इस दशा को प्राप्त होकर जीव विषय की इच्छा से रहित हो जाता है और शरीर वृद्धता का घर होकर नष्ट प्राय हो जाता है।

हीण भिण्णसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ । दुब्बलो दुक्खिओ सुयई, संपत्तो दसमीं दसं ॥४१॥

छाया—हीन भिन्नस्वरो दीनो, विपरीतो विचित्तकः । दुर्बलो दुःखितः स्वपिति, सम्प्राप्तो दशमीं दशाम् ॥४१॥

भावार्थ—दशवीं दशा के आने पर मनुष्य का स्वर, हीन और दूसरी तरह का हो जाता है। वह दीन बन जाता है तथा उसका चित्त भी पहले के समान नहीं रहता। वह दुर्बल और दुःखी होकर सोता रहता है।

दसगस्स उवक्खेवो, वीसइवरिसो उ गिण्हई विज्जं। भोगा य तीसगस्स य, चत्तालीसस्स विण्णाणं ॥४२॥

छाया—दशकस्योपक्षेपः, विंशतिवर्षस्तु गृह्णाति विद्यां। भोगाश्च त्रिंशत्कस्य, चत्वारिंशत्कस्य विज्ञानम् ॥४२॥

भावार्थ—मनुष्य जब दश वर्ष का होता है तब उसका मुण्डन एवं उस अवस्था के योग्य दूसरे उत्सव आदि किये जाते हैं। जब वह वीस वर्ष का होता है तब विद्या का ग्रहण करता है एवं तीस वर्ष का होने पर भोगों को भोगता है और चालीस वर्ष का होकर विज्ञान से युक्त होता है।

पण्णासगस्स चक्खू हायइ, सट्ठिकयस्स बाहुबलं। भोगा य सत्तरिस्स य, असीइगस्स य विण्णाणं ॥४३॥

छाया—पञ्चाशत्कस्य चक्षुर्हीयते, षष्टिकस्य बाहुबलं। भोगाश्च सप्ततिकस्य, अशीतिकस्य च विज्ञानम् ॥४३॥

भावार्थ—मनुष्य जब पचास वर्ष का होता है तब उसकी दृष्टि कमजोर हो जाती है और जब साठ वर्ष का होता है तब उसका बाहुबल घट जाता है। जब वह सत्तर वर्ष का होता है तब भोग भोगने की शक्ति जाती रहती है और अस्सी वर्ष का होने पर ज्ञान शक्ति अल्प हो जाती है।

नउई नमइ सरीरं, वाससए जीविअं चयइ। कित्तिओ ऽत्थ सुहो भागो, दुहो भागो य कित्तिओ ॥४४॥

छाया—नवतिकस्य नमति शरीरं, वर्ष शते जीवितं त्यजति। कीर्तितोऽत्र सुखभागः, दुःखभागश्च कीर्तितः ॥४४॥

भावार्थ—यह मनुष्य जब नव्वे वर्ष का होता है तब उसका शरीर नम जाता है यानी झुक जाता है और सौ वर्ष का होकर मर

जाता है। इस सौ वर्ष की आयु में कितना भाग सुख का है और कितना दुःख का है यह बतला दिया गया है।

जो वाससयं जीवइ, सुही भोगे पभुंजइ। तस्सावि सेविउं सेओ, धम्मो य जिणदेसिओ ॥४५॥

छाया—यः वर्षशतं जीवति, सुखी भोगान् भुङ्क्ते। तस्यापि सेवितुं श्रेयः, धर्मश्च जिनदेशितः ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है और सुखी है तथा भोगों को भोगता है उसको भी जिनभाषित धर्म का सेवन करना ही कल्याणकारक है।

किं पुण सपच्चवाए, जो नरो निच्चदुक्खिओ। सुट्ठुयरं तेण कायव्वो, धम्मो य जिणदेसिओ ॥४६॥

छाया—किं पुनः सप्रत्यवाये, यो नरो नित्य दुःखितः। सुष्ठुतरस्तेन कर्त्तव्यः, धर्मश्च जिनदेशितः ॥४६॥

भावार्थ—जिनकी आयु कष्ट से पूर्ण है तथा जो सदा दुःखी रहता है उसके लिये तो कहना ही क्या है? उसको तो भलीभाँति जिनभाषित धर्म का आचरण करना ही चाहिये।

णंदमाणो चरे धम्मं, वरं मे लट्ठतरं भवे। अणंदमाणो वि चरे धम्मं, मा मे पावयरं भवे ॥४७॥

छाया—नन्दमानश्चरेद्धर्मं, वरं मे लष्टतरं भवेत्। अनन्दन्नपि चरेद्धर्मं, मा मे पापतरं भवेत् ॥४७॥

भावार्थ—सांसारिक सुख का उपभोग करता हुआ भी मनुष्य कल्याणकारी जिनभाषित धर्म का आचरण करे। वह यह विचार करे कि—यह धर्म आचरण मुझको इस भव में तथा परभव मे सुख देगा। एवं दुःख भोगने समय भी मनुष्य धर्म का आचरण करे। वह यह विचार करे कि—मैंने धर्म का आचरण नहीं किया था इसलिये मुझको यह दुःख भोगना पड़ता है। अब यदि धर्म नहीं करूँगा तो

आगे चलकर फिर वहाँ दुःख भोगना पडेगा।

णवि जाई कुलं वावि, विज्जा वावि सुसिक्खिया। तारे नरं व नारीं वा, सव्वं पुण्णेहिं वड्ढई ॥४८॥

छाया—नापि जातिः कुलं वापि, विद्या वापि सुशिक्षिता। तारयेन्नरं वा नारीं वा, सर्वं पुण्येन वर्धते ॥४८॥

भावार्थ—जाति, कुल तथा परिश्रम के साथ सीखी हुई विद्या ये कोई भी नर और नारी को संसार से पार करने में समर्थ नहीं होते किन्तु सब प्रकार का सुख पुण्य से प्राप्त होता है।

पुण्णेहिं हीयमाणेहिं, पुरिसागारो वि हायई। पुण्णेहिं वड्ढमाणेहिं पुरिसागारो वि वड्ढई ॥४९॥

छाया—पुण्यैर्हीयमानैः, पुरुषकारोऽपि हीयते। पुण्यैर्वर्धमानैः, पुरुषकारोऽपि वर्धते ॥४९॥

भावार्थ—पुण्य के क्षय होने पर यश, कीर्ति, लक्ष्मी और पुरुष का अभिमान ये सभी नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की वृद्धि होने पर इन सब की वृद्धि होती है।

पुण्णाइं खलु आउसो! किच्चाइं करणिज्जाइं पीइकराइं वण्णकराइं धण्णकराइं कित्तिकराइं, णो य खलु आउसो! एवं चिंतियव्वं—एस्संति खलु बहवे समया, आवलिया, खणा, आणपाणू, थोवा, लवा, मुहुत्ता, दिवसा, अहोरत्ता, पक्खा, मासा, रिऊ, अयणा, संवच्छरा, जुग्गा, वाससया, वाससहस्सा, वाससयसहस्सा, वासकोडीओ, वासकोडाकोडीओ। जत्थ णं अम्हे बहूइं सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं पडिवज्जिस्सामो, पट्ठविस्सामो

करिस्सामो ता किमत्थं आउसो ! नो एवं चिंतेयव्वं भवइ ? अंतरायबहुले खलु अयं जीविए इमे बहवे वाइयपित्तिय सिंभिय संनिवाइया विविहा रोगायंका फुसंति जीवियं ॥ सूत्र १३ ॥

छाया—पुण्यानि खलु-आयुष्मन् ! कृत्यानि करणीयानि प्रीतिकराणि वर्णकराणि धनकराणि कीर्तिकराणि । न च खलु आयुष्मन् ! एवं चिन्तितव्यं-एष्यन्ति खलु वहवः समया आवलिकाः क्षणाः आणप्राणाः स्तोकाः लवा मुहूर्त्ताः दिवसाः अहोरात्राः पक्षा मासा ऋतवः अयनाः संवत्सरा युगाः वर्षशतं वर्षसहस्रं वर्षशतसहस्रं वर्षकोटिः वर्षकोटिकोटि । यत्र वयं बहूनि शीलानि व्रतानि गुणान् विरमणानि प्रत्याख्यानानि पौषधोपवासान् प्रतिपत्स्यामहे प्रस्थापयिष्यामः करिष्यामः । तत् किमर्थ मायुष्मन् ! नो एव चिन्तितव्यं भवति ? अन्तरायबहुलं खल्वेतज्जीवितं इमे वहवः वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपातिकाः विविधाः रोगातङ्का स्पृशन्ति जीवितम् ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! पुण्य कार्य्य करना चाहिये, वह करने योग्य है । पुण्य करने से मित्र आदि के साथ प्रेम की वृद्धि होती है । जगत् में प्रशंसा होती है, धन की वृद्धि होती है, कीर्ति होती है । यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि—बहुत समय, आवलिका, क्षण, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, कोटि वर्ष, कोटि-कोटि वर्ष आने वाले हैं, उनमे हम बहुत शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास अङ्गीकार कर लेंगे और आचरण कर लेंगे । हे आयुष्मन् ! ऐसा नहीं सोचने का कारण यह है कि—यह जीवन विघ्नों से भरा हुआ है । ये वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले रोग सभी मनुष्यों को उत्पन्न होते रहते हैं ।

आसीय खलु आउसो ! पुव्विं मणुया ववगयरोगायंका बहुवाससयसहस्सजीविणो, तंजहा—जुयलधम्मिया, अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणा विज्जाहरा। तेणं मणुया अणइवरसोमचारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खण-धरा सुजायसव्वंगसुंदरा रत्तुप्पलपउम कर चरण कोमलंगुलितला नगनगरमगर सागरचक्कंकधरंकलक्खणंकियतला सुप्पइट्ठियकुम्मचारुचलणा आणुपुव्विं सुजायपीवरंगुलिया उन्नयतणुतंबनिद्धनहा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणी कुरुविं-दावत्त वट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गनिमग्ग गूढजाणु गयस सण सुजायसंन्निभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासियगई सुजाय-वरतुरय गुज्झ देसा आइण्ण हयव्व निरुवलेवा पमुइयवरतुरय सीह अइरेगवट्टियकडी साहय सोणंद मुसलदप्पण निगरिय-वरकणगच्छरु सरिसवरवडरवलिय मज्झा गंगावत्त पयाहिणावत्त तरंगभंगुर रविकिरण तरुणबोहियविकोसायंत पउमगंभी-रवियडनाभी उज्जुयसमसहिय सुजायजायजच्च तणुकसिण निद्ध आइज्जलडह सुकुमाल मउयरमणिज्जरोमराई झसविहग-सुजायपीण कुच्छीझसोयरा पउमवियडनाभी संगयपासा सन्नयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाईयपीणरईयपासा अकरंडुयकणय रुयगनिम्मल सुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थबत्तीसलक्खणधरा कणगसिलायलुज्जल पसत्थ समतलउव-चियविच्छिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिहवट्टिय भुया भुयगीसरउिउल भोग आयाणफलिह उच्छूढदीहबाहू जुगसंनिम पीणरइय पीवरपउट्ठा संठियउवचिय घणथिरसुबद्ध सुवट्टसुसिलिट्ठ लट्ठपव्वसंधी रत्ततलोवचिय मउय मंसल सुजाय लक्खणपसत्थ अच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजाय कोमलवरंगुलिया तंबतलिण सुइरुइरनिद्धनक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा सुत्थियपाणिलेहा ससिरविसंखचक्कसुत्थियसुविभत्तसुविरइयपाणिलेहा

वरमहिसवराह सीह सद्दूल उसभनागवर विउल उन्नय मउपक्खंधा चउरंगुल सुप्पमाण कंबुवर सरिस गीवा अवट्ठिय-सुविभत्तचित्त मंसू मंसल संठियपसत्थ सद्दूल विउल हणुया ओयविय सिलप्पवाल बिंबफल सन्निभाधरुट्ठा पंडुर ससिसगल-विमल निम्मल संखगोक्खीर कुंद दगरयमणालियाधवलदंतसेढी अखंड दंता अफुडियदंता अविरलदंता सुणिद्धदंता सुजायदंता एगदंता सेढीविव अणेगदंता हुयवहनिद्धंतधोय तत्त तवणिज्ज रत्ततलतालुजीहा सारसनवथणिय महुगभीर कुंचनिग्घोसदुंदुहिसरा गरुलायय उज्जुतुंगनासा अवदारियपुंडरीयवयणा कोकासियधवलपुंडरीयपत्तलच्छा आनामिय-चावरुइल किण्ह चिहुरराई सुसंठिय संगय आयय सुजाय भुमया अल्लीणपमाण जुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसल कवोल-देसभागा अडरुग्गाय समग्गसुनिद्ध चंदद्ध संठियनिडाला उडुवइपडिपुन्नसोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणनिचिय सुबद्धलक्खणुन्नयकूडागारनिभ निरुवमपिंडियग्गसिरा हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्ज केसंतकेसभूमी सामली बोंडघण-निचियच्छोडिय मिउविसय सुहुमलक्खण पसत्थ सुगंधि सुंदरभुयमोयगभिंगनीलकज्जल पहट्ठभमरगणनिद्धनिउरंबनिचिय-कुंचिय पयाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजण गुणोववेया माणुम्माणपमाण पडिपुन्न सुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागार-कंतपियदंसणा सब्भावसिंगारचारुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तेणं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा हंसस्सरा कोंचस्सरा णंदिस्सरा णंदिघोसा सीहस्सरा सीह घोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सर घोसा अणुलोमवाउ वेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणीप्फोसपिट्ठंतरोरुपरिणया पउमुप्पल सुगंधिसरिसनीसास सुरभिवयणा छवी निरायंका उत्तमपसत्था अइसेसनिरुवमतणू जल्लमल्लकलंक सेयरयदोसवज्जियसरीरनिरुवलेवा, छायाउज्जोवियंगमंगा, वज्जरिसह-

नाराय संघयणा समचउरंस संठाण संठिया छधणुसहस्साइं उड्ढं उच्चतेणं पएणत्ता, तेणं मणुया दो छप्पएणगपिट्ठिक-रंडयसया पएणत्ता। समणाउसो! तेणं मणुया पगइभद्या पगइविणीया पगइउवसंता पगइपयणुकोह माणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दया विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा असिमसिकिसि वाणिज्जविवज्जिया विडिमंतरनिवासिणो इच्छियकामकामिणो गेहागार रुक्खकयनिलया पुढविपुप्फफलाहारा तेणं मणुयगणा पएणत्ता॥ (सूत्र १४)

छाया—आसँश्च खल्वायुष्मन्! पूर्वं मनुजा व्यपगतरोगातङ्काः बहुवर्षशतसहस्रजीविन तद्यथा—युगलधार्मिका—अर्हन्तो वा चक्रवर्तिनो वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणाः विद्याधराः। ते मनुजाः अनतिवरसौम्यचारुरूपाः भोगोत्तमा भोगलक्षणधरा सुजातसर्वाङ्गसुन्दरा रक्तोत्पलपद्म कर चरणकोमलाङ्गुलितलाः नगनगरचक्राङ्कधराङ्कलक्षणाङ्कितलाः सुप्रतिष्ठित कूर्मचारुचरणाः आनुपूर्व्या सुजातपीवराङ्गुलिकाः उन्नततनुताम्रस्निग्धनखाः संस्थितसुश्लिष्टगूढगुल्फा एणी कुरुविन्दवत्ता वृत्तानुपूर्वजङ्घा समुद्गनिमग्न गूढजानवः गजश्वसन सुजात सन्निभोरवः वरवारणमत्ततुल्यविक्रमविलासितगतयः सुजातवरतुरगगुह्यदेशाः आकीर्णहया इव निरुपलेपाः प्रमुदितवरतुरगसिंहातिरेक वर्तितकटय संहृत सोनन्दमुशलदर्पण निगीर्णवरकनकत्सरुसदृश वरवज्रवलितमध्या गङ्गावर्त प्रदक्षिणावर्त तरङ्गभङ्गुर रवि किरण तरुण बोधित विकोशायत पद्मगम्भीर विकट नाभयः ऋजुकसम संहित सुजात जात्य तनु कृष्णस्निग्धदेयलटह सुकुमारमृदुक रमणीय रोमराजयः झष विहग सुजातपीनकुक्षयः झषोदराः पद्मविकटनाभय सङ्गतपार्श्वा सन्नत पार्श्वाः सुन्दरपार्श्वाः सुजातपार्श्वाः मित मातृकपीन रतिदपार्श्वाः अकरण्डुक कनकरुचक निर्मल सुजातनिरुपहत देहधारिणः प्रशस्तद्वात्रिंशल्लक्षणधरा कनकशिलातलोज्ज्वल समतलोपचितविच्छिन्न पृथुलवक्षसः श्रीवत्साङ्कितवक्षसः

पुरवरपरिघावर्तितभुजाः भुजगेश्वरविपुल भोगादानपरिघावक्षिप्तदीर्घबाहवः युगसन्निभपीनरतिद पीवर प्रकोष्ठा सस्थितोपचित घनस्थिर सुबद्ध सुवृत्तसुश्लिष्ट लष्टपर्वसन्धयः रक्ततलोपचित मृदुकमांसल सुजातलक्षणप्रशस्ताच्छिद्रजालपाणयः पीवरवर्तितसुजात कोमल वराङ्गुलिकाः ताम्रतलिनशुचिरुचिर स्निग्धनखाः चन्द्रपाणिरेखाः सूर्य्यपाणिरेखाः शंखपाणिरेखाः चक्रपाणिरेखाः सुस्थितपाणिरेखाः शशिरविशंखचक्र सुस्थित सुविभक्त सुविरचितपाणिरेखाः वरमहिषवराहसिंह शार्दूल वृषभ नागवरविपुलोन्नत मृदुकस्कन्धाः चतुरङ्गुल सुप्रमाणकंबुवरसदृशग्रीवाः अवस्थितसुविभक्तचित्रश्मश्रव मांसलसंस्थित प्रशस्त शार्दूल हनवः परिकर्मितशिलाप्रवालबिम्लफल सदृशाधरोष्ठा पाण्डुरशशिकलविमल निर्मलशंख गोक्षीरकुन्द दकरजोऽनाविल धवलदन्तश्रेणयः अखण्डदन्ताः अस्फुटितदन्ताः सुस्निग्धदन्ताः सुजातदन्ता एकदन्ताः श्रेणय इव अनेकदन्ताः हुतवहनिर्ध्मात धौत तपनीयरक्त तलतालु जिन्हाः सारसनवं स्तनित मधुर गम्भीर क्रौञ्च निर्घोषदुन्दुभिस्वराः गरुडायतर्जतुङ्गनासिकाः अवदारित पुण्डरीकवदनाः, विकसितधवलपुण्डरीक पत्रलाक्षाः अवनामित चापरुचिरकृष्णाचिकुरराजि सुसंस्थितसङ्गतायत सुजात भ्रुवः आलीन-प्रमाणयुक्तश्रवणा सुश्रवणाः पीनसमसिल कपोलभागाः अचिरोद्गत समग्र सुस्निग्धचन्द्रार्धसंस्थितललाटाः उडुपति प्रतिपूर्णसौम्यवदनाः छत्राकारोत्तमाङ्गदेशाः घननिचितसुबद्ध लक्षणोन्नतकुटागारनिभनिरुपमपिण्डिकाग्रशिरसः हुतवहनिर्ध्मात धौत तप्ततपनीय केशान्तकेशभूमयः शाल्मलीबोण्ड घननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्त सूक्ष्मलक्षण सुगन्धि सुन्दरभुजमोचकभृङ्गनील कज्जल प्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकरम्ब निचितप्रदक्षिणावर्तमूर्ध शिरोजाः लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः मानोन्मानप्रमाण प्रतिपूर्ण सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः शशिसौम्याकार कान्तप्रियदर्शनाः स्वभावशृङ्गारचारुरूपाः प्रासादीयाः दर्शनीयाः अभिरूपाः प्रतिरूपा ते मनुजा ओघस्वराः मेघस्वराः हंसस्वराः क्रौञ्चस्वराः नन्दिस्वराः नन्दिघोषाः सिंहस्वराः सिंहघोषाः मञ्जुस्वराः मञ्जुघोषाः सुस्वराः सुस्वरघोषाः अनुलोमवायुवेगाः कङ्कग्रहणयः कपोतपरिणामाः शकुनिप्फोस पृष्ठान्तरोरु परिणताः पद्मोत्पलसुगन्ध सदृशनिश्वास सुरभिवदनाः छविमन्त निरातङ्काः उत्तमप्रशस्ताः अतिशेषनिरुपमतनवः जल्लमलकलङ्कस्वेद रजोदोष-

वर्जिततनिरुलेपाः छायोद्योतिताङ्गाङ्गाः वज्रऋषभनाराचसंहननाः समचतुरस्र संस्थान संस्थिताः षडधनुः सहस्राण्यूर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः ते मनुजाः द्विषट्पञ्चाशत् पृष्टकरण्डकशताः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् ! ते मनुजाः प्रकृतिभद्रकाः प्रकृतिविनीताः प्रकृत्युपशान्ता। प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः मृदुमार्दव सम्पन्नाः आलीनाः भद्रकाः विनीताः अल्पेच्छाः असन्निधि सञ्चयाः अचण्डाः असिमषिकृषिवाणिज्य विवर्जिताः विडिमान्तरनिवासिनः ईप्सितकामकामिनः गेहाकारवृक्ष कृतनिलयाः पृथिवीपुष्पफलाहाराः ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ताः ॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् श्रमण ! प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आरा में मनुष्य नीरोग होते थे। उनको न तो कभी ज्वर आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती थीं और न कभी तत्काल प्राणों को हरण करने वाले शूल आदि आतङ्क ही उत्पन्न होते थे। वे कई लाख वर्ष तक जीते रहते थे। जैसे कि जुगलिये, तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव, चारण और विद्याधर। इन मनुष्यों का रूप बहुत ही मनोहर तथा दृष्टि को लोभित करने वाला था। ये लोग उत्तमोत्तम भोगों को भोगने वाले होते थे। इनके अङ्गों मे भोगो की सूचना देने वाले स्वस्तिक आदि शुभ लक्षण विद्यमान होते थे। इनके सभी अङ्ग सुन्दरता से उत्पन्न और परम सुन्दर होते थे। इनके हाथ और पैर की अङ्गुलियाँ लाल कमल की तरह रक्तवर्ण और कोमल होती थीं। इनके हाथ और पैर के तलवे कमल के समान कोमल और पर्वत, नगर, मछली, समुद्र, चक्र, चन्द्रमा और मृग के समान आकार वाली रेखाओं से युक्त होते थे। इनके चरण कछुए की तरह बराबर और क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते थे। इनके पैर की अङ्गुलियाँ सुन्दर और स्थूल होती थीं इनके नख रक्तवर्ण उन्नत सूक्ष्म और चमकीले होते थे। इनके पैर के गुल्फ छिपे हुए, उत्तम आकृति वाले और सुन्दरता पूर्ण जमे हुए होते थे। जैसे हरिणी की जङ्घा और कुरुविन्द नामक तृण क्रमशः स्थूल और गोल होते हैं उसी तरह इसकी जङ्घायें गोल और क्रमशः स्थूल

होती थीं। इनके घुटने समुद्गक पक्षी के घुटनों की तरह पुष्ट और अन्दर घुसे हुए होने के कारण लक्षित नहीं होते थे। इनके उरु हाथी की सूँड की तरह सुन्दर और स्थूल होते थे। ये लोग गजराज की तरह पराक्रम के सहित सविलास गमन करते थे। इनकी शिश्न इन्द्रिय सुन्दर घोड़े की इन्द्रिय के समान होती थी। जैसे जातिवान् अश्व मल से उपलिप्त नहीं होता है उसी तरह ये लोग मल के लेप से रहित होते थे। प्रसन्न घोड़ा एवं सिंह की कटि से भी बढ़कर इनकी कटि वर्तुल होती थी। जैसे त्रिकाष्टिका का मध्य भाग तथा मुशल, दर्पण और सोने की बनी हुई तलवार की मुष्टि पतली होती है उसी तरह इनका उदरप्रदेश पतला होता था और उसमें तीन रेखाएँ होती थीं। इनकी नाभि गङ्गा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त और तरङ्ग की तरह रेखाओं से युक्त एवं सूर्य्य की किरणों द्वारा तत्काल विकसित कमल की तरह सुन्दर और गम्भीर होती थी। इनके शरीर की रोम श्रेणी समान, घन, सुन्दर, सूक्ष्म, काली, सुकुमार और मनोहर होती थी। इनका उदर मछली और पक्षी के उदर की तरह सुन्दर और पुष्ट होता था। इनकी नाभि कमल के समान गहरी होती थी। इनके पार्श्वभाग युक्त, नम्र, सुन्दर, परिमाणयुक्त पुष्ट और आनन्द दायक होते थे। इनका शरीर मांस से पूर्ण होने के कारण पीठ की हड्डी से रहित सा प्रतीत होता था। और सुवर्ण के समान गौर एवं मलरहित तथा रोग आदि के कारण उत्पन्न विकारो से रहित सुन्दर होता था। इनके शरीर में बत्तीस प्रकार के उत्तम लक्षण विद्यमान होते थे। इनकी छाती सोने की शिला के समान प्रशस्त समतल पुष्ट और चौड़ी होती थी तथा उसके ऊपर श्रीवत्स का चिह्न होता था। नगर की अर्गला के समान लम्बी और वर्तुल इनकी भुजाएँ होती थीं। वह सर्पराज के शरीर की तरह दीर्घ तथा अपने स्थान से निकाल कर रखे हुए परिघ दण्ड के समान विशाल और सुन्दर होती थीं। इनके हाथ की कलाई यूप की तरह मोटी, बड़ी और सुन्दर होती थी। इनकी भुजाओं की सन्धियाँ मनोहर आकृति वाली स्नायुओं से दृढ बँधी हुई गोल घन और मनोज्ञ होती थीं। इनके हाथ के तलवे रक्त वर्ण पुष्ट,

कोमल और शुभ लक्षणों को धारण करने वाले छिद्ररहित और जाल के समान तथा सुन्दर होते थे। इनकी अङ्गुलियाँ मोटी, वर्तुल, कोमल उत्तम और सुन्दर होती थीं। इनके नख रक्तवर्ण चमकीले समतल निर्मल और सुन्दर होते थे। इनके हाथ में चन्द्रमा के आकार वाली रेखा होती थी। तथा उसमें सूर्य्य, शंख, स्वस्तिक और चक्र के आकार की रेखा भी होती थी। एवं उसमें चन्द्रमा, सूर्य्य, शंख स्वस्तिक और चक्र की रेखायें होती थीं। इनके हाथ की सभी रेखायें अलग अलग स्पष्ट बनी हुई होती थीं। इनके स्कन्ध, उत्तम भैंसा, सूअर, सिंह, व्याघ्र, साँड, श्रेष्ठ हाथी के कन्धे के समान उन्नत और कोमल होते थे। इन के कण्ठ में तीन रेखाएं होती थीं। और वह कण्ठ अपनी अङ्गुली के प्रमाण से चार अङ्गुल का होता था तथा उत्तम शंख के समान उसकी आकृति होती थी। उनकी मूँछ, न तो बड़ी और न छोटी ही होती थीं। किन्तु उचित प्रमाण युक्त सुन्दर और अलग अलग रहने वाले केशों से भरी हुई होती थीं। उनकी ठुड्डी सिंह की ठुड्डी के समान सुन्दर आकृति वाली और पुष्ट होती थी। उनका अधरोष्ठ साफ किये हुए मूँगे की तरह रक्त होता था। इनके दाँतों की श्रेणी चन्द्रमा के खण्ड की तरह निर्मल एवं मल रहित शंख, गाय के दूध का फेन, कुन्द पुष्प और कमलिनी के मूल के समान शुक्ल होती थीं। इनके दाँत खण्ड रहित और रेखा हीन घन और अरूक्ष तथा सुन्दर होते थे। इनके दाँतों की श्रेणी एक एक दाँतों की होती थी। दांत के पीछे दूसरा दांत नहीं होता था। इनके दांत पूरे बत्तीस होते थे। इनके दांतों की श्रेणी एक आकार की होती थी। और दांतो का सङ्गठन इतना घन होता था कि—उनका परस्पर पार्थक्य लक्षित नहीं होता था। इनकी जीभ और तालु अग्नि में तपाकर निर्मल किये हुए उष्ण सुवर्ण की तरह रक्त वर्ण होते थे। इनके कण्ठ का शब्द सारस पक्षी के शब्द की तरह मधुर और नवीन मेघ के शब्द की तरह गम्भीर एवं क्रौञ्च पक्षी तथा दुन्दुभि के शब्द की तरह गम्भीर और मधुर होता था। इनकी नासिका गरुड की नासिका के समान सीधी और ऊँची होती थी। इनका मुख सूर्य्य की किरणों

द्वारा विकसित श्वेत कमल के समान सुन्दर और रोमावली से युक्त होता था। इनकी भौंहें नम्र धनुष के आकार की होती थीं और इनके केश काले और सुन्दर श्रेणी में स्थित होते थे। वे दीर्घ और सुनिष्पन्न होते थे। इनके कान उचित प्रमाण वाले यानी न तो बहुत बड़े और न बहुत छोटे होते थे। वे कानों के द्वारा भली भाँति शब्दों को सुन सकते थे। इनके गाल मोटे होते थे। इनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान विस्तृत और सुन्दर होता था। इनका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूर्ण और सुन्दर होता था। इनका शिर छत्ता के समान वर्तुल होता था। इनके शिर का अग्रभाग लोहे के मुद्गर की तरह घन और स्नायुओं से मजबूत बँधा हुआ शुभलक्षणों से पूर्ण कूटागार के तुल्य उपमारहित और वर्तुल होता था। इनके मस्तक का चर्म, अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की तरह रक्त वर्ण होता था। इनके शिर के केश शाल्मली वृक्ष के फल की तरह छोटे और घन होते थे तथा कोमल, निर्मल, सूक्ष्म, चिकने, अत्यन्त सुगन्ध, सुन्दर और लक्षण युक्त होते थे। एवं भुजमोचक रत्न, भृङ्ग, नीलमणि, कज्जल और प्रसन्न भ्रमर की तरह वे काले होते थे। वे परस्पर जुड़े हुए कुछ वक्र और दाहिनी ओर फिरे हुए होते थे। वे पुरुष स्वस्तिक आदि शुभ लक्षण तथा माष तिल आदि व्यञ्जन एवं क्षमा आदि गुणों से युक्त होते थे। उनके शरीर तथा अङ्गों के मान और उन्मान पूर्ण रूप में होते थे। तथा वे जन्म सम्बन्धी दोषों से वर्जित होते थे। उनकी आकृति सौम्य होती थी और उनके दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता था। उनका वेष स्वभाव से ही उत्तम होता था। उनके दर्शन से चित्त में प्रसन्नता होती थी। तथा नेत्र देखने में परिश्रम अनुभव नहीं करते थे। वे अत्यन्त कमनीय होते थे। उनका रूप असाधारण होता था। उनका रूप देखने वाले को प्रतिक्षण नया नया प्रतीत होता था। उनके कण्ठ का स्वर नदी के प्रवाह के समान गम्भीर और मेघ की तरह दीर्घ होता था। वह हंस के स्वर की तरह मधुर और क्रौञ्च पक्षी के स्वर की तरह दीर्घदेश व्यापी होता था। तथा नन्दी यानी वीणा समूह के शब्द की तरह मधुर होता

था। उनका स्वर सिंह के शब्द के समान दूर तक जाने वाला और मधुर होता था। उनके शरीर में विचरने वाले वायु का वेग शरीर के अनुकूल होता था इसलिए उनके उदर में वायु के वेग से उत्पन्न होने वाला गुल्म रोग उत्पन्न नहीं होता था। उनका गुदाशय कङ्कपक्षी के गुदाशय के समान नीरोग होता था। उनकी जाठराग्नि कबूतर की जाठराग्नि के समान भोजन किये हुए आहार को शीघ्र पचाने वाली अतितीव्र होती थी। अतः उनको अजीर्ण रोग कभी उत्पन्न नहीं होता था। जैसे पक्षी की गुदा में मल का लेप नहीं लगता है उसी तरह उनकी गुदा में भी मलविसर्जन करते समय उसका लेप नहीं लगता था। उनकी पीठ, दोनों पार्श्व भाग और उरू उचित परिमाण वाले होते थे। उनके मुख से निकलने वाला वायु कमल, पद्म और कुष्ठ नामक गन्ध द्रव्य के समान सुन्दर गन्धयुक्त होता था। उनके शरीर की छवि मनोहर होती थी तथा चमड़ी कोमल होती थी। वे नीरोग तथा उत्तम लक्षणों से युक्त एवं अनुपम शरीर वाले होते थे। उनके शरीर में शीघ्र निवृत्त होने वाला मल तथा विलम्ब से मिटने वाला मल, प्रस्वेद, कलङ्क, धूलि एवं मलिनता उत्पन्न करने वाली चेष्टा ये सब नहीं होते थे। तथा मूत्र और विष्ठा का लेप भी उनमें नहीं लगता था। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग उनके शरीर की शोभा से चमकते रहते थे। उनका संहनन वज्र ऋषभ नाराच होता था। उनका संस्थान समचतुरस्र होता था। वे छः हजार धनुष लम्बे होते थे। वे मनुष्य स्वभाव से ही भद्र, स्वभाव से ही विनीत, स्वभाव से ही उपशान्त होते थे। उनके क्रोध मान माया और लोभ स्वभाव से ही पतले होते थे। वे मनोहर और परिणाम में सुख देने वाली मृदुता से सम्पन्न होते थे। उनमें कपट पूर्ण मृदुता नहीं होती थी। वे समस्त क्रियाओं में शान्ति पूर्वक चेष्टा करने वाले होते थे। वे उस क्षेत्र के योग्य समस्त कल्याणों के पात्र और बड़े लोगों का विनय करने वाले और अल्प इच्छा वाले होते थे। वे धन धान्य आदि का संग्रह नहीं करते थे तथा नाश भी नहीं करते थे। वे तलवार चला कर तथा लेखन कला द्वारा तथा कृषि कर्म से एवं वाणिज्य कर्म से जीविका का साधन नहीं करते थे। वे कल्प वृक्ष

की शाखाएं जो कि प्रासाद की तरह आकृति वाली होती थीं, उनमें निवास करते थे। वे इच्छानुसार विषयों की कामना करने वाले होते थे। वे घर की तरह आकार वाले वृक्षों के अन्दर निवास करते थे। वे पृथिवी और कल्प वृक्षों के फूल और फल का आहार करते थे। वे मनुष्य इस प्रकार के कहे गये हैं॥ सूत्र १४॥

आसी य समणाउसो ! पुव्वि मणुयाण छव्विहे संघयणे, तंजहा (१) वज्जरिसह नाराय संघयणे, (२) रिसह नारायसंघयणे, (३) नारायसंघयणे, (४) अद्ध नारायसंघयणे, (५) कीलियसंघयणे, (६) छेवट्ठ संघयणे। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं छेवट्टे संघयणे वट्टइ। आसी य आउसो ! पुव्वि मणुयाणं छव्विहे संठाणे, तंजहा (१) समचउरंसे, (२) णग्गोह परिमण्डले, (३) साइ, (४) कुज्जे, (५) वामणे, (६) हुंडे। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं हुंडे संठाणे वट्टइ॥ सूत्र १५॥

संघयणं संठाणं, उच्चत्तं आउयं य मणुयाणं। अणुसमयं परिहायइ, ओसप्पिणी काल दोसेणं ॥ ५० ॥
कोह मय माय लोहा, उस्सण्णं वड्ढए य मणुयाणं। कूड तुल कूडमाणा, तेणाणुमाणेण सव्वंति ॥ ५१ ॥
विसमा अज्ज तुलाओ, विसमाणि य जणवएसु माणाणि। विसमा राजकुलाइं, तेण उ विसमाइं वासाइं ॥ ५२ ॥
विसमेसु य वासेसु, हुंति असाराइं ओसहिबलाइं। ओसहिदुब्बल्लेण य, आउं परिहायइ णराणं ॥ ५३ ॥
एवं परिहायमाणे, लोए चंदुव्व काल पक्खम्मि। जे धम्मिया मणुस्सा, सुजीवियं जीवियं तेसिं ॥ ५४ ॥

छाया—आसञ्च श्रमणायुष्मन् ! पूर्वं मनुजाना षड् विधानि संहननानि । तद्यथा वज्रर्षभनाराचं, ऋषभनाराचं, नाराचं, अर्धनाराचं, कीलिका, सेवार्त्तम् । सम्प्रति खलु आयुष्मन् ! मनुजानां सेवार्त्तं संहननं वर्तते । आसँश्च आयुष्मन् ! पूर्वं मनुजाना षड्विधानानि संस्थानानि, तद्यथा—समचतुरस्रं, न्यग्रोधपरिमण्डलं, सादि, कुब्जं, वामनं, हुण्डम् । सम्प्रति खल्वायुष्मन् ! मनुजाना हुण्ड संस्थानं वर्तते ॥ १५ ॥

संहननं संस्थान मुच्चत्वमायुश्च मनुजानाम् । अनुसमयं परिहीयते, अवसर्पिणीकाल दोषेण ॥ ५० ॥
क्रोध मद माया लोभाश्चोत्सन्नं वर्धन्ते च मनुजानाम् । कूटतुला कूटमानानि, तेनानुमानेन सर्वमिति ॥ ५१ ॥
विषमा अद्य तुला, विषमाणि च जनपदेषु मानानि । विषमाणि राजकुलानि, तेन तु विषमाणि वर्षाणि ॥ ५२ ॥
विषमेषु च वर्षेषु, भवन्त्यसाराण्यौषधिबलानि । औषधिदुर्बलत्वेन च, आयुः परिहीयते नराणाम् ॥ ५३ ॥
एवं परिहीयमाने लोके, चन्द्र इव कृष्ण पक्षे । ये धार्मिकाः मनुष्याः, सुजीवितं जीवितं तेषाम् ॥ ५४ ॥

हे आयुष्मन् श्रमण ! पूर्व काल में मनुष्यों का संहनन छः प्रकार का होता था। जैसे कि—वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त्त । परन्तु हे आयुष्मन् ! आज कल मनुष्यों का सेवार्त्त संहनन है। हे आयुष्मान् ! पूर्व समय में मनुष्यों का संस्थान छः प्रकार का होता था। जैसे कि—समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज वामन और हुण्डक। परन्तु आज कल मनुष्यों का एक मात्र हुण्डक संस्थान होता है ॥ सूत्र १५ ॥

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से आज कल प्रतिक्षण मनुष्यों का संहनन संस्थान, उच्चता और आयु घटते जा रहे हैं। क्रोध मान माया और लोभ की अविच्छिन्न वृद्धि होती जा रही है। कूट तुला और कूटमान भी बढ़ता जाता है तथा उसी के अनुसार

सभी बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं । आज कल लेने के लिये दूसरा और देने के लिये दूसरा तुला यानी बाट (तोलने का परिमाण) बनाया जाता है तथा लेने के लिए दूसरा और देने के लिए दूसरा माप भी निर्माण किया जाता है, एवं राजकुल भी विविध प्रकार का अन्यायकारी होगया है इस कारण वर्ष भी दुःखद हो गये हैं। वर्ष जब दुःखद हो जाते हैं तो औषधि यानी गेहूं आदि अन्न भी बल-हीन होजाते हैं और अन्न के बलहीन होने से प्राणियों की आयु शीघ्र ही चीण हो जाती है। इस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के समान निरन्तर चीण होते हुए प्राणि-समाज में धार्मिक मनुष्यो का ही जीवन सफल समझना चाहिये ॥ ५०-५४ ॥

आउसो ! से जहा नामए केई पुरिसे एहाए कयबलिकम्मे कयकोऊय मंगलपायच्छित्ते सिरसिएहाए कंठे मालाकडे आविद्धमणि सुवएणे अहय सुमहग्घवत्थ परिहिए चंदणोक्किएणगायसरीरे सरससुरहिगंध गोसीसं चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावएणगविलेवणे कप्पियहारद्धहारे तिसरयपालंब पलंबमाणे कडिसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जअंगुलिज्ज गललियंगयललियकयाभरणे णाणामणि कणगरयणकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोवियाणणे मउड-दित्तसिरए हारुत्थयसुकयरइयवच्छे पालंब पलंबमाण सुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलिए णाणामणिकणगरयण विमल महरिहनिउणोविय- मिसिमिसंत -विरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठ आविद्धवीर वलए । किं बहुणा ? कप्परुक्खोविव अलंकिय विभूसिए सुइपयए भवित्ता अम्मापियरो अभिवाययिज्जा । तएणं तं पुरिसं अम्मापियरो एवं वइज्जा जीव पुत्ता ! वाससयं ति, तंपियाइं तस्स नो बहुयं हवइ । कम्हा ? वाससयं जीवंतो वीसं जुगाइं जीवइ, वीसइं जुगाइं जीवंतो दो अयणसयाइं जीवइ, दो अयणसयाइं जीवंतो छ उउसयाइं जीवइ, छ उउसयाइं जीवंतो बारस मास सयाइं

जीवइ, वारस मास सयाइं जीवंतो चउवीसं पक्ख सयाइं जीवइ, चउवीसं पक्खसयाइं जीवंतो छत्तीसं राइंदियसहस्साइं जीवइ, छत्तीसं राइंदियसहस्साइं जीवंतो दस असीयाइं मुहुत्त सयसहस्साइं जीवइ, दस असीयाइं मुहुत्त सय सहस्साइं जीवंतो चत्तारि उस्सासकोडीसए सत्त य कोडीओ अडयालीसं य सयसहस्साइं चत्तालीसं य सहस्साइं जीवइ। चत्तारि उस्सासकोडीसए जाव चत्तालीसं य उस्साससयसहस्साइं जीवंतो अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ। कहमाउसो! अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ ? गोयमा! दुव्वलाए खंडियाणं बलियाए छडियाणं खयरमुसलपच्चाहयाणं ववगयतुसकणियाणं अखंडाणं अफुडियाणं फलगसरियाणं एक्केक्कवीयाणं अद्धतेरसपलियाणं पत्थएणं, सेवियणं पत्थए मागहए कल्लं पत्थो सायं पत्थो चउसट्ठी तंडुलसाहस्सीओ मागहओ पत्थओ। विसाहस्सिएणं कवलेणं बत्तीसा कवला पुरिसस्स आहारो, अट्ठावीसं इत्थीयाए, चउवीसं पण्णगस्स। एवामेव आउसो! एयाए गणणाए दो असइओ पसई, दो पसईओ सेइया होइ, चत्तारि सेइया कुलओ, चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्था आढगं, सट्ठीए आढयाणं जहण्णए कुंभे, असीइए आढयाणं मज्झिमे कुंभे, आढयसयं उक्कोसए कुंभे, अट्ठेव आढग सयाइं वाहो। एएणं माहप्पमाणेणं अद्धतेवीसं तंडुलवाहे भुंजइ।

आयुष्मन्! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः स्नातः कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शिरसि स्नात. कण्ठे मालाकृतः आविद्धमणिसुवर्णः अहतसुमहार्घवस्त्रपरिहितः चन्दनोत्क्लिन्न गात्रशरीरः सरससुरभिगन्धः गोशीर्षचन्दनानुलिप्तगात्रः शुचिमालावर्णकविलेपनः कल्पितहाराद्धहार त्रिसरक प्रालम्ब प्रलम्बमानः कटिसूत्रकसुकृतशोभः पिनद्ध ग्रैवेयकाङ्गुलीयक ललिताङ्गदललितकृताभरणः नानामणिकनकरत्न-कटकत्रुटितस्तम्भितभुजः अधिकरूपसश्रीकः कुण्डलोद्योतिताननः मुकुटदत्तशिराः हारावस्तृतसुकृतरतिद वक्षाः प्रालम्ब प्रलम्बमानसुकृतपटोत्तरीयः

मुद्रिकापिङ्गलाङ्गुलिकनानामणिकनक रत्न विमलमहार्ह निपुणपरिकर्मित देदीप्यमानविरचित सुश्लिष्ट विशिष्ट लष्टाविद्धवीरवलयः। किं वहुना? कल्पवृक्षइव अलङ्कृतविभूषितः शुचिपदं भूत्वा मातापितरावभिवादयेन। ततस्तं पुरुषं मातापितरावेवं वदेतां, जीवपुत्र! वर्षशत मिति। तदपि च तस्य नो वहुकं भवति। वर्षशतं जीवन् विंशति युगानि जीवति। विंशति युगानि जीवन् द्वे अयनशते जीवति। द्वे अयनशते जीवन् षड् ऋतुशतानि जीवति। षड् ऋतुशतानि जीवन् द्वादशमासशतानि जीवति, द्वादशमासशतानि जीवन् चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवति, चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवन् षड्त्रिंशत् रात्रिन्दिवससहस्राणि जीवति। षट्त्रिंशतरात्रिदिवससहस्राणि जीवन् दशाशीति मुहूर्त्तशतसहस्राणि जीवति, दशाशीति मुहूर्त-शतसहस्राणि जीवन् चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि सप्त च कोटीः अष्टचत्वारिंशच्च शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च सहस्राणि जीवति। चत्वार्युच्छ्वा-सकोटिशतानि यावत् चत्वारिंशच्च उच्छ्वास सहस्राणि जीवन् सार्द्ध द्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते। कथमायुष्मन्! अर्द्धत्रयोविंशतिं तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते? गौतम! दुर्वलया खण्डितानां वलवत्या छटितानां खदिरमुसलप्रत्याहतानां व्यपगततुषकणिकानां अखण्डानां अस्फुटितानां पृथक् सारिताना मेकैकवीजाना मर्द्धत्रयोदशपलानां प्रस्थकः। सोऽपि प्रस्थकः मागधः। कल्ये प्रस्थः सायं प्रस्थः चतुः षष्टि तन्दुल साहस्रिको मागधः प्रस्थकः, द्विसाहस्रिकेण कवलेन द्वात्रिंशत् कवलाः पुरुषस्याहारः, अष्टाविंशतिः स्त्रियाः, चतुर्विंशतिः पण्डकस्य। एवमेवायुष्मन्! एतया गणनया, द्वे असत्यौ प्रसृतिः, द्वे प्रसृती सेतिका भवति। चतस्रः सेतिकाः कुडवः। चत्वारः कुडवाः प्रस्थः। चत्वारः प्रस्थाः आढकं, षष्ट्या आढकानां जघन्यकुम्भः, अशीत्या आढकानां मध्यमः कुम्भः, आढकशत मुत्कृष्टः कुम्भः। अष्टावाढकशतानि वाहः। एतेन वाहप्रमाणेन अर्धत्रयोविंशति तन्दुलवाहान् भुङ्क्ते।

अर्थ—जैसे कोई पुरुष स्नान करके गृहदेवताओं की पूजा करता है और दुःस्वप्न का नाश करने के लिये तिलक धारण और

मङ्गल कार्य्य करता है। उसके पश्चात् सशीर्षस्नान करके कण्ठ में फूलों की माला धारण करता है। उसके पश्चात् मणि और सुवर्ण के भूषणों को धारण करके निर्मल और बहुमूल्य वस्त्र पहनता है तथा अङ्गों में चन्दन का लेपन एवं उत्तम गन्धयुक्त गोशीर्षचन्दन का तिलक लगा कर पवित्र पुष्पों की माला धारण करता है एव शरीर की शोभा वृद्धि के लिए केशर का भी लेपन करता है। उसके पश्चात् आठ लड़ और तीन लड़ वाले हारों को पहन कर उनके ऊपर एक लम्बा हार पहनता है तथा कमर में कटिसूत्र को धारण कर गोप तथा अंगुठियों को धारण करता है। इसी तरह हाथ और भुजाओं में भूषणों को धारण करके भुजाओं को भर देता है और कानों में कुण्डल धारण करके मुख की शोभा को बढाता है, शिर के ऊपर मुकुट धारण करके शिर को दीप्त करता हुआ छाती को हारों से ढँक कर उसको अत्यधिक शोभनीय कर देता है। लम्बे वस्त्र की चादर धारण करके अँगुठियों द्वारा अपनी अङ्गुलियों को पीतवर्ण कर देता है। वह अपने हाथ में वीरकटक धारण करता है। वह वीरकटक निर्मल और श्रेष्ठ शिल्पी द्वारा रचित तथा स्वच्छ किया हुआ चमकदार, मनोहर और उत्तम सन्धिभाग वाला होता है और अधिक कहाँ तक वर्णन किया जाय ? जैसे कल्पवृक्ष पत्र पुष्प और फलों द्वारा विभूषित होता है, उसी तरह वह सब प्रकार से पवित्र होकर अपने माता पिता के पास जाकर उनके चरणों मे प्रणाम करता है। उसको माता पिता आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि हे पुत्र ! तुम सौ वर्ष तक जीवन धारण करो। परन्तु उसकी आयु यदि सौ वर्ष की होती है तो वह सौ वर्ष तक जीता है, नहीं तो नहीं जीता है। वह सौ वर्ष की आयु भी कोई अधिक नहीं है। क्योकि जो सौ वर्ष जीता है वह भी बीस युग ही जीता है। युग ५ वर्ष का माना जाता है, इसलिये सौ वर्ष में २० युग होते हैं। जो पुरुष बीस युग जीता है वह दो सौ अयन तक जीता है। छः मास का एक अयन होता है। जो दो सौ अयन तक जीता है वह छः सौ ऋतु तक जीता है और छः सौ ऋतु तक जीने वाला मनुष्य बारह सौ मास तक जीता है। जो बारह सौ

मास तक जीता है वह चौवीस सौ पक्ष तक जीता है। जो चौवीस सौ पक्ष तक जीता है वह ३६००० छत्तीस हजार अहोरात्र तक जीता है। जो छत्तीस हजार अहोरात्र तक जीता है वह दस लाख और अस्सी हजार मुहूर्त तक जीता है। जो दस लाख और अस्सी हजार मुहूर्त तक जीता है वह चार अरब सात कोटि अड़तालीस लाख और चालीस हजार उच्छ्‌वास तक जीता है। जो मनुष्य इतने समय तक जीता है वह साढे बाईस तन्दुलवाह जो आगे कहा जाने वाला अन्न का प्रमाण है उतना अन्न खा जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्! सौ वर्ष तक जीने वाला संसारी मनुष्य सौ वर्ष मे साढे बाईस तन्दुलवाह अन्न किस तरह खा जाता है ? सो बतलाइये।

उत्तर—हे गौतम! दुर्बल स्त्री ने जिसे खण्डन किया है और बलवती स्त्री ने सूप के द्वारा जिसको साफ किया है तथा जो खदिर (खैर) के मूसल से कूट कर बिना तुष का कर दिया गया है एवं जिसके दाने टूटे हुए नहीं हैं तथा जिसमें से कङ्कर आदि चुन कर बाहर निकाल दिये गये हैं ऐसे साढे बारह पल चावलों का एक प्रस्थक होता है। पल का प्रमाण इस प्रकार समझना चाहिये—पाँच गुञ्जा का एक माष होता है और सोलह माषों का एक कर्ष होता और चार कर्ष का एक पल होता है। इस प्रकार ३२० गुञ्जा के प्रमाण को एक पल कहते हैं। ऐसे साढे बारह पलों का एक प्रस्थक होता है जो मागध भी कहा जाता है। उस प्रस्थक या मागध के प्रमाण से प्रतिदिन प्रातः काल के भोजन के लिये एक प्रस्थक तथा सायंकाल के भोजन के लिए एक प्रस्थक अन्न की आवश्यकता होती है। एक प्रस्थक में ६४ हजार चावल के दाने होते हैं। दो हजार चावल के दानो का एक

कवल होता है। ऐसे बत्तीस कवलों में एक पुरुष का आहार पूर्ण होता है और अठाईस कवलों में स्त्री का आहार पर्याप्त होता है। तथा चौबीस कवलों में नपुंसक का आहार पूर्ण होता है। धान्य से पूर्ण और नीचे की ओर किया हुआ मनुष्य का हाथ (मुट्ठी) असती कहलाता है। ऐसे दो असती का एक प्रसृति प्रमाण होता है और दो प्रसृति प्रमाण का एक सेतिका प्रमाण होता है और चार सेतिका प्रमाण का कुडव होता है। चार कुडव का एक प्रस्थक होता है और चार प्रस्थक का एक आढक होता है। साठ आढक का एक जघन्य कुम्भ और अस्सी आढक का मध्यम कुम्भ एवं सौ आढक का उत्कृष्ट कुम्भ होता है और आठ सौ आढकों का एक वाह प्रमाण होता है। इस वाह प्रमाण से मनुष्य सौ वर्ष में साढ़े बाईस वाह अन्न खा जाता है।

ते य गणिय निद्दिट्ठा—

चत्तारि य कोडीसया, सट्ठिं चेव य हवंति कोडीओ। असीइं य तंदुलसयसहस्सा (४६०८०•००००), हवंति त्ति मक्खायं॥ ५५ ॥

तं एवं अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजंतो अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजइ, अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजंतो चउवीसं नेहाढग सयाइं भुंजइ, चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजंतो छत्तीसं लवण पलसहस्साइं भुंजइ। छत्तीसं लवण पलसहस्साइं भुंजंतो छप्पडग साडगसयाइं नियंसेइ दो मासिएण परियट्टएणं, मासिएण वा परियट्टएण वारसपड साडग सयाइं नियंसेइ। एवामेव आउसो! वास सयाउयस्स सव्वं गणियं तुलियं मवियं, नेह लवण भोयण छायणं वि॥ एयं गणियप्पमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं जस्सत्थि तस्स गुणिज्जइ जस्स नत्थि तस्स किं गणिज्जइ?

छाया—तानि च गणितनिर्दिष्टानि ''चत्वारि च कोटिशतानि' षष्टिश्चैव भवन्ति कोटयः। अशीतिश्च तन्दुलशत सहस्राणि, भवन्तीत्या स्यातम्'' ॥ तदेव मर्धपट्क मुद्गकुम्भान् भुङ्क्ते। अर्धपट् मुद्गकुम्भान् भुञ्जानः चतुर्विशतिं स्नेहाढकशतानि भुङ्क्ते। चतुर्विंशतिं स्नेहाढक शतानि भुञ्जानः पट्त्रिंशत् लवणपल सहस्राणि भुङ्क्ते। पट्त्रिंशत् लवणपल सहस्राणि भुञ्जानः पट् पट्क शाटकशतानि परिदधाति। द्विमासिकेन परिवर्तनेन, मासिकेन वा परिवर्तनेन द्वादश पटशाटकशतानि परिदधाति। एव मेव आयुष्मन्! वर्षशतायुषः सर्वं गणित तुलित मवित स्नेह लवण भोजनाच्छादनानामपि। एतद्गणितप्रमाण द्विविध भणित महर्षिभिः। यस्यास्ति तस्य गण्यते यस्य नास्ति तस्य किं गण्यते।

भावार्थ.—पूर्वपाठ मे कहा गया कि—सौ वर्ष जीवन धारण करने वाला मनुष्य साढे बाईस वाह तन्दुल का भोजन करता है। अब इस पाठ मे यह बताया जाता है कि—एक वाह तन्दुल में कितने तन्दुल के दाने होते हैं। गणित करने से एक वाह तन्दुल के ४६०८०००००० चार अरब साठ करोड़ और अस्सी लाख दाने होते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सौ वर्ष के जीवन काल में साढे बाईस वाह तन्दुलों का भोजन करता है वह साढे पाँच मूँग का घड़ा अर्थात् साढे पाँच घड़ा मूँग भी खा जाता है तथा चौबीस सौ आढक स्नेह-यानी घृत और तेल खा जाता है एवं छत्तीस हजार पल नमक खा जाता है तथा वह सौ वर्ष मे ६०० कपडे पहिनता है। यदि दो मास पर नूतन कपड़ा पहिनता है तो सौ वर्ष में ६०० कपड़े पहनता है और यदि प्रतिमास नूतन वस्त्र धारण करता है तब तो वह सौ वर्ष में १२०० कपड़े पहनता है। हे आयुष्मन सौ वर्ष तक जीवन धारण करने वाले मनुष्यो के उपभोग में आने वाले तन्दुल, वस्त्र, नमक तेल और घृत का हिसाब पूर्वोक्त प्रकार से महर्षियों ने बतलाया है। यह

हिसाब उस मनुष्य की अपेक्षा से कहा गया है जिसके निकट खाने पहनने के लिये सामग्री विद्यमान है किन्तु जिसके निकट वह सामग्री है ही नहीं उसका हिसाब ही क्या हो सकता है ?

ववहारगणियदिट्ठं, सुहुमं निच्छयगयं मुणेयव्वं । जइ एवं ण वि एयं, विसमा गणणा मुणेयव्वा ॥ ५६ ॥

छाया—व्यवहारगणितदृष्टं, सूक्ष्म निश्चयगतं ज्ञातव्यम् । यद्येतन्नाप्येतद् । विषमा गणना ज्ञातव्या ॥ ५६ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त पाठ में जिस गणित के द्वारा सौ वर्ष जीवन धारण करने वाले पुरुष के भोजन और वस्त्र का हिसाब बतलाया गया है वह व्यवहार गणित समझना चाहिये। इससे भिन्न एक सूक्ष्म गणित होता है जिसको निश्चय गणित कहते हैं। जब निश्चय गणित के अनुसार गणना की जाती है तब व्यवहार गणित का हिसाब नहीं रहता है। अतः इन दोनो गणितो की गणना परस्पर भिन्न समझनी चाहिये ॥ ५६ ॥

कालो परमणिरुद्धो, अविभज्जो तं तु जाण समयं तु । समया य असंखिज्जा, हवंति उस्सासनिस्सासे ॥ ५७ ॥

छाया—कालः परमनिरुद्धः अविभाज्यः तं तु जानीहि समयं तु । समयाश्चासख्येयाः, भवन्ति उच्छ्वासनिःश्वासे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—जिसका विभाग नहीं किया जा सकता है ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म काल को समय समझो। इस प्रकार एक उच्छ्वास निःश्वास में असंख्यात समय व्यतीत होते हैं ॥ ५७ ॥

हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो। एगे उस्सासनिस्सासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥ ५८ ॥

छाया—हृष्टस्यानवगलस्य, निरुपक्लिष्टस्य जन्तोः । एक उच्छ्वासनिःश्वासः, एष प्राण इत्युच्यते ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जो पुरुष पुष्ट है तथा रोग और क्लेश से रहित है उसके एक उच्छ्वास निश्वास को प्राण कहते हैं ॥ ५८ ॥

सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे। लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते वियाहिये ॥ ५६ ॥

छाया—सप्त प्राणाः स स्तोकः, सप्त स्तोकाः स लवः। लवानां सप्त सप्तत्या, एष मुहूर्तो व्याख्यातः ॥ ५६ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त सात प्राणों का एक स्तोक काल कहा जाता है और सात स्तोकों का एक लव और ७७ सत्तहत्तर लवो का एक मुहूर्त काल कहा गया है ॥ ५६ ॥

एग मेगस्स णं भंते ! मुहूत्तस्स केवइया उस्सासा वियाहिया ? गोयमा !
तिण्णि सहस्सा सत्त य, सयाण तेवत्तरिं य उस्सासा। एस मुहूत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंत नाणीहिं ॥ ६० ॥

छाया—एकैकस्य हे भदन्त ! मुहूर्त्तस्य कियन्त उच्छ्वासा व्याख्याताः ? गौतम !
त्रीणि सहस्राणि, सप्त च शतानि त्रिसप्ततिश्च उच्छ्वासाः। एष मुहूर्तो भणितः, सर्वैरनन्तज्ञानिभिः ॥ ६० ॥

भावार्थः—(प्रश्न) हे भगवन्। एक मुहूर्त में कितने उच्छ्वास कहे गये हैं? हे गौतम! एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ और ७३ उच्छ्वास कहे गये हैं। सभी अनन्तज्ञानियों ने यही मुहूर्त का प्रमाण बतलाया है ॥ ६० ॥

दो नालिया मुहूत्तो, सट्ठिं पुण नालिया अहोरत्तो। पन्नरस अहोरत्ता पक्खो, पक्खा दुवे मासो ॥ ६१ ॥

छाया—द्वे नालिके मुहूर्त्तं, षष्टिः पुनर्नालिकाः अहोरात्रः। पञ्च दशाहोरात्राः पक्षः, पक्षौ द्वौ मासः ॥ ६१ ॥

भावार्थः—दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है और साठ घड़ी का दिन रात होता है। पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष और दो पक्षों का एक मास होता है ॥ ६१ ॥

दाडिमपुप्फागारा लोहमई, नालिया उ कारव्वा। तीसे तलम्मि छिद्दं, छिद्दप्पमाणं पुणो वुच्छं ॥ ६२ ॥

छाया—दाडिमपुष्पाकारा लोहमयी, नालिका तु कारयितव्या। तस्यास्तले छिद्र, छिद्रप्रमाणं पुनर्वक्ष्ये ॥ ६२ ॥

भावार्थः—दाड़िम के फूल के समान आकार वाली एक घड़ी बनवानी चाहिये और उसके तल मे एक छिद्र बनवाना चाहिये। उस छिद्र का प्रमाण मैं आगे बताऊंगा ॥ ६२ ॥

छनउइ पुच्छवाला, तिवासजायाए गोतिहाणीए। असंवलिया उज्जाय, णायव्वं नालिया छिद्दं ॥ ६३ ॥

छाया—षण्णवतिः पुच्छबालाः, त्रिवर्षजातायाः गोवत्सायाः। असंवलिताः ऋतुकाः, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६३ ॥

भावार्थः—तीन वर्ष की बछड़ी के पूछ के ९६ छ्यानवे बाल, जो सीधे और मुड़े हुए नहीं है उनके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६३ ॥

अहवा उ पुच्छवाला, दुवासजायाए गयकरेणूए। दो वाला अब्भग्गा, णायव्वं नालियाच्छिद्दं ॥ ६४ ॥

छाया—अथवा तु पुच्छबालाः, द्विवर्ष जातायाः गज करेणोः। द्वौ बालावभग्नौ, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६४ ॥

भावार्थः—दो वर्ष के हाथी के बच्चे के पूँछ के दो बाल जो टूटे हुए नहीं हैं उनके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६४ ॥

अहवा सुवण्ण मासा, चत्तारि सुवट्टिया घणा सूई। चउरंगुलप्पमाणा, णायव्वं नालियाच्छिद्दं ॥ ६५ ॥

छाया—अथवा सुवर्णमाषाश्चत्वारः सुवर्तिता घना सूचिः। चतुरङ्गुलप्रमाणा, ज्ञातव्यं नालिकाच्छिद्रम् ॥ ६५ ॥

भावार्थः—अथवा चार मासा सोना के बराबर एक वर्तुलाकर (गोल) और घन सुई होती है। उस सुई का प्रमाण चार अङ्गुल का होता है। उसके समान घड़ी का छिद्र होना चाहिये ॥ ६५ ॥

उदगस्स नालियाए, हवंति दो आढयाओ पमाणं। उदगं य भाणियव्वं, जारिसयं तं पुणो वुच्छं ॥ ६६ ॥

छाया—उदकस्य नालिकायाः, भवतो द्वावाढको प्रमाणम्। उदकञ्च भणितव्यं, यादृशकं तत्पुनर्वक्ष्ये ॥ ६६ ॥

भावार्थ—घड़ी के अन्दर दो आढक जल भरना चाहिये। वह जल जिस तरह का होना चाहिये वह बताया जाता है ॥ ६६ ॥

उदगं खलु णायव्वं, कायव्वं दूसपट्टपरिपूयं। मेहोदगं पसण्णं, सारहयं वा गिरिणईए ॥ ६७ ॥

छाया—उदकं खलु ज्ञातव्यं, कर्त्तव्यं दूष्यपट्टपरिपूतम्। मेघोदकं प्रसन्नं, शारदिकं वा गिरिनद्याः ॥ ६७ ॥

भावार्थः—घड़ी में भरने के लिये जल को वस्त्र द्वारा छान लेना चाहिये। यह जल या तो मेघ का निर्मल जल हो अथवा शरतकाल की पर्वतीय नदी का हो ॥ ६७ ॥

बारस मासा संवच्छरो य, पक्खा उ ते उ चउवीसं। तिण्णेव य सट्ठिसया, हवंति राइंदियाणं य ॥ ६८ ॥

छाया—द्वादशभिर्मासैः संवत्सरश्च, पक्षास्तु ते तु चतुर्विंशतिः। त्रीण्येव च षष्टिशतानि, भवन्ति रात्रिन्दिवानि ॥ ६८ ॥

भावार्थः—बारह मास का एक वर्ष होता और एक वर्ष के चौवीस पक्ष होते हैं। चौवीस पक्षो के तीन सौ साठ दिन रात होते हैं ॥ ६८ ॥

एगं य सयसहस्सं, तेरस चेव य भवे सहस्साइं। एगं य सयं नउयं, हुंति अहोरत्त उस्सासा ॥ ६९ ॥

छाया—एकञ्च शत सहस्रं, त्रयोदश चैव च भवेयुः सहस्राणि। एकञ्च शतं नवति भवन्ति अहोरात्रे उच्छ्वासाः ॥ ६९ ॥

भावार्थः—एक दिन रात में एक लाख तेरह हजार और एक सौ नव्वे उच्छ्वास होते हैं ॥ ६९ ॥

तित्तीस सय सहस्सा, पंचाणउई भवे सहस्साइं। सत्त य सया अणूणा, हवंति मासेण उस्सासा ॥ ७० ॥

छाया—त्रयस्त्रिंशच्छत सहस्राणि, पञ्चनवतिश्च भवेयुः सहस्राणि। सप्तशतान्यनूनानि, भवन्ति मासेनोच्छ्वासा ॥ ७० ॥

भावार्थः—एक मास मे ३३ लाख ९५ हजार और पूरे सात सौ उच्छ्वास होते हैं ॥ ७० ॥

चत्तारि य कोडीओ, सत्तेव य हुंति सय सहस्साइं। अडयालीस सहस्सा, चत्तारि सया य वरिसेण ॥ ७१ ॥

छाया—चतस्रः कोटयः, सप्त च भवन्ति शतसहस्राणि। अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि, चत्वारि शतानि च वर्षेण ॥ ७१ ॥

भावार्थः—एक वर्ष में चार कोटि सात लाख अड़तालीस हजार और चार सौ उच्छ्वास होते हैं ॥ ७१ ॥

चत्तारि य कोडिसया, सत्त य कोडिओ हुंति अवराओ। अडयाल सयसहस्सा, चत्तालीसं सहस्साइं ॥ ७२ ॥

छाया—चत्वारि कोटिशतानि, सप्त च कोटयः भवन्ति अपराः। अष्टचत्वारिंशच्छतसहस्राणि, चत्वारिंशत्सहस्राणि ॥ ७२ ॥

भावार्थः—४०७४८४०००० चार अर्बुद सात कोटि अड़तालीस लाख और चालीस हजार उच्छ्वास सौ वर्ष की आयु वाले प्राणी के होते है ॥ ७२ ॥

वाससयाउस्सेए उस्सासा, इत्तिया मुणेयव्वा। पिच्छह आउस्स खयं, अहोणिसं झिज्झमाणस्स ॥ ७३ ॥

छाया—वर्षशतायुष्कस्योच्छ्वासा इयन्तो ज्ञातव्याः। पश्यतायुषः क्षय, महर्निश क्षीयमाणस्य ॥ ७३ ॥

भावार्थः—हे भव्य जीवो ! सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष के इतने ही उच्छ्वास होते हैं। रात दिन क्षय होते हुए आयु के क्षय की ओर दृष्टि पात करो ॥ ७३ ॥

राइंदिएण तीसं तु मुहुत्ता, नव सयाइं मासेणं। हायंति पमत्ताणं, न य णं अबुहा वियाणंति ॥ ७४ ॥

छाया—रात्रिन्दिवेन त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, नव शतानि मासेन। हीयन्ते प्रमत्तानां, न चाबुधाः विजानन्ति ॥ ७४ ॥

भावार्थ—दिन रात मे तीस और एक मास मे नौ सौ मुहूर्त प्रमादी के नष्ट होते हैं परन्तु अज्ञानी जीवों को इसका ज्ञान नहीं होता है ॥ ७४ ॥

तिरिण सहस्से सगले, छच्च सए उडुवरो हरइ आउं। हिमंते गिम्हासु य, वासासु य होइ णायव्वं ॥ ७५ ॥

छाया—त्रीणि सहस्राणि सकलानि, षट्शतानि उडुवरो हरत्यायुः। हेमन्ते ग्रीष्मासु च, वर्षासु च भवति ज्ञातव्यम् ॥ ७५ ॥

भावार्थः—हेमन्त ऋतु मे सूर्य्य छः सौ तीन हजार मुहूर्त्त आयु को हरण करता है। इसी तरह ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु मे जानना चाहिये ॥ ७५ ॥

वाससयं परमाऊ, इत्तो पएणास हरइ निद्दाए। इत्तो वीसइ हावइ, बालत्ते वुड्ढभावे य ॥ ७६ ॥

छाया—वर्षशतं परमायुः, इतो पञ्चाशत् हरति निद्रया। इतो विंशतिर्हीयते, बालत्वे वृद्धभावे च ॥ ७६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की परम आयु सौ वर्ष की होती है, उसमें से पचास वर्ष तो वह सोने मे नष्ट कर देता है। बाकी ५० वर्ष मे से १० वर्ष बाल्यकाल मे और दस वर्ष वृद्धावस्था में नष्ट करता है। इस प्रकार ५० मे से २० वर्ष निकल कर शेष ३० वर्ष ही आयु के बचते है ॥ ७६ ॥

सीउण्ह पंथ गमणे, खुहापिवासा भयं य सोगे य। णाणा विहा य रोगा, हवंति तीसाए पच्छद्धे ॥ ७७ ॥

छाया—शीतोष्ण पथिगमनानि, क्षुत्पिपासे भयञ्च शोकश्च। नानाविधाश्च रोगाः, भवन्ति त्रिशतः पश्चार्धे ॥ ७७ ॥

भावार्थः—शीत, उष्ण, मार्गगमन, क्षुधा, पिपासा, भय, शोक और नाना प्रकार के रोग इनके द्वारा तीस वर्ष में से आधे १५ वर्ष व्यर्थ नष्ट होजाते हैं ॥ ७७ ॥

एवं पंचासीई णट्ठा, पण्णरसमेव जीवंति । जे हुंति वाससइया, न य सुलहा वास सयजीवा ॥ ७८ ॥

छायाः—एव पञ्चाशीतिर्नष्टानि, पञ्चदश एव जीवन्ति । ये भवन्ति वर्षशतिकाः, न च सुलभाः वर्षशतजीवाः ॥ ७८ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से पचासी वर्ष तो व्यर्थ ही व्यतीत होजाते हैं, इसलिये जो सौ वर्ष तक जीता है वह वस्तुतः १५ ही वर्ष जीता है और सौ वर्ष तक जीने वाला पुरुष भी विरला ही होता है ॥ ७८ ॥

एवं णिस्सारे माणुसत्तणे, जीविए अहिवडंते । न करेह धम्मचरणं, पच्छा पच्छाणुताहे हा ॥ ७९ ॥

छायाः—एवं निस्सारे मानुषत्वे, जीवितेऽधिपतति । न कुरुत धर्मचरण, पश्चात् पश्चादनुतप्स्यथ हा ! ॥ ७९ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त प्रकार से यह मानुष जीवन साररहित है और जीवन व्यतीत होता हुआ चला जा रहा है तो भी आप लोग धर्म का आचरण नहीं करते हैं यह दुःख का विषय है । आपको अन्त मे पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ ७९ ॥

घुट्ठंमि सयं मोहे, जिणेहिं वरधम्मतित्थमग्गस्स । अत्ताणं य न जाणह, इह जाया कम्मभूमीए ॥ ८० ॥

छायाः—घुष्टे स्वयं मोहे, जिनैर्वरधर्मतीर्थमार्गे । आत्मान च न जानीत, इह जाता कर्मभूमौ ॥ ८० ॥

भावार्थः—श्री तीर्थङ्करों ने स्वयं यह घोषित किया है कि—ज्ञान दर्शन और चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं, ये ही मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं तो भी आप लोग मोहवशीभूत होकर इस धर्म को अङ्गीकार नहीं करते हैं और आत्मज्ञान मे प्रवृत्त नहीं होते हैं। आप लोग कर्मभूमि में उत्पन्न हुए हैं। अतः आपको यह अवश्य करना चाहिये ॥ ८० ॥

नईवेगसमं चंचलं, जीविअं जुव्वणं य कुसुमसमं। सुक्खं य जमनियत्तं, तिरिणवि तुरमाणभुञ्जाइं ॥ ८१ ॥

छायाः—नदीवेगसमं चञ्चल जीवितं, यौवनञ्च कुसुमसमम्। सौख्यञ्च यदनियतं त्रीण्यपि त्वरमाणभोग्यानि ॥ ८१ ॥

भावार्थः—यह जीवन नदी के वेग के समान चञ्चल है और यौवन फूल के समान शीघ्र विनाशी है तथा सुख भी स्थिर नहीं है। ये तीनों ही अतिशीघ्र भोगे जाकर क्षय होजाते हैं।

एयं खु जरामरणं, परिक्खिवइ वग्गुरा व मयजुहं। न य णं पिच्छह पत्तं, सम्मूढा मोहजालेणं ॥ ८२ ॥

छाया—एतत्खलु जरामरणं, परिक्षिपति वागुरा इव मृगयूथम। न च पश्यथ प्राप्तं, सम्मूढा मोहजालेन ॥ ८२ ॥

भावार्थः—जैसे मृगयूथ को जाल वेष्टित कर लेता है उसी तरह प्राणिवर्ग को जरामरण वेष्टित कर रहा है तथापि मोहजाल से मोहित होकर आप लोग इसे नहीं देख रहे हैं ॥ ८२ ॥

आउसो ! जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं मणाभिरामं थिज्जं (थिज्जं) विसासियं संमयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं रयण करंडओविव सुसंगोवियं चेलपेडाविव सुसंपरिवुडं तिल्लपेडाविव सुसंगोवियं

मा णं उएहं मा णं सीयं मा णं वाला मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाहि य पित्तिय संभिय संनिवाइय विविहा रोगायंका फुसंतु तिकट्टु एवं पियाइं अधुवं अणियय्ं असामयं चयावचइयं विप्पणास-धम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स विपचइयव्वं ।

छाया—आयुष्मन् यदपि च इदं शरीरं इष्टं कान्तं प्रियं मनोज्ञं मनोऽमं मनोऽभिरामं स्थिरं वैश्वासिक सम्मतं बहुमतं अनुमतं भाण्डकरण्डकसमानं रत्नकरण्डकमिव ससङ्गोपितं चेलपेटेव संपरिवतं तैलपेटेव ससंगोपितं मा उष्णं, मा शीतं, मा व्यालाः, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा चौराः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा व्याधिः, पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपातिक विविधा रोगातङ्काः स्पृशन्तु इति कृत्वा, एवमप्यध्रुव-मनियतमशाश्वतं चयापचयिकं विप्रणाशधर्मकं पश्चाद् वा पूर्वं वा अवश्यं विप्रत्यक्तव्यम् ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! यह जो शरीर है, यह बहुत ही इष्ट है, यह बहुत ही कमनीय है। यह बहुत ही प्रिय है, यह मन को बहुत ही प्रिय है। मन इसमें सदा लगा रहता है। यह मन को बहुत ही रमणीय मालूम होता है, यह स्थिर है, विश्वसनीय है। इसके समस्त कार्य्य अच्छे मालूम होते हैं। यह बहुत ही माननीय है। इसका कभी भी अप्रिय नहीं किया जाता है। जैसे जेवर के भाण्ड की यत्नपूर्वक रक्षा की जाती है। जैसे रत्न की पेटी की बहुत हिफाजत के साथ रक्षा की जाती है उसी तरह इस शरीर की रक्षा की जाती है। जैसे कपड़े से भरी हुई पेटी जाब्ते के साथ रखी जाती है एव जिस तरह तेल और घी के भाजन गोपनपूर्वक रखे जाते हैं उसी तरह इस शरीर की हिफाजत की जाती है। सर्दी, गर्मी, सर्प आदि जानवर, क्षुधा, पिपासा, चोर, दंश, मशक, व्याधि तथा वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के रोग और आतङ्क से इस शरीर की रक्षा की जाती

है तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता है किन्तु क्षण क्षण में नष्ट होता रहता है। इष्ट आहार आदि के लाभ होने से वृद्धि को प्राप्त होता है और नहीं प्राप्त होने से क्षीण होजाता है। यह स्वभावतः विनाशशील है। पहले या पीछे यह अवश्य ही जीव के द्वारा छोड़ दिया जाता है।

एअस्स वियाइं आउसो ! आणुपुव्वेणं अट्ठारस्सा य पिट्ठकरण्डगसंधिओ बारस पंसलिया करंडा छप्पंसुलिए कडाहे विहत्थिया कुच्छी चउरंगुलिया गीवा चउ पलिया जिब्भा दुपलियाणि अच्छीणि चउ कवालं सिरं बत्तीसं दंता सत्तंगुलिया जीहा अद्धुट्ठपलियं हिययं पणवीसं पलाइं कालिज्जं दो अंता पंच वामा पण्णत्ता, तं जहा—थूलंते य, तणुयंते य, तत्थणं जे से थूलंते तेण उच्चारे परिणमइ। तत्थ णं जे से तणुयंते तेणं पासवणे परिणमइ, दो पासा पण्णत्ता तं जहा–वामे पासे दाहिणपासे य। तत्थ णं जे से वामे पासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से दाहिणे पासे से दुहपरिणामे।

छाया—एतस्यापि आयुष्मन्! आनुपूर्व्या अष्टादश च पृष्टिकरण्डक सन्धयः, द्वादश पांशुलिकाः करण्डकाः, षट् पांशुलिकाः कटाहाः, वितस्तिका कुक्षिः, चतुरङ्गुलिका ग्रीवा, चतुष्पलिका जिव्हा, द्विपलिके अक्षिणी, चतुष्कपाल शिरः, द्वात्रिंशद्दन्ताः, सप्ताङ्गुलिका जिव्हा, सार्द्धत्रिपल हृदय, पञ्चविंशतिपलानि कालिज्ज, द्वे अन्त्रे, पञ्च वामे प्रज्ञप्ते, तद्यथा स्थूलान्त्रञ्च तन्वन्त्रञ्च। तत्र यत् स्थूलान्त्र तेनोच्चारः परिणमति। तत्र यत् तन्वन्त्रं तेन प्रस्रवण परिणमति। द्वे पार्श्वे प्रज्ञप्ते तद्यथा वाम पार्श्व, दक्षिणपार्श्वञ्च। तत्र यत् वामं पार्श्वं तत् सुखपरिणाम, तत्र यत् दक्षिणं पार्श्वं तत् दुःखपरिणामम्।

भावार्थः—हे आयुष्मन् ! इस शरीर मे पीठ की हड्डी में क्रमशः अठारह सन्धियाँ हैं। उनका आकार बाँस की गाँठ के समान है। उन अठारह सन्धियो मे से बारह हड्डियाँ निकली हुई हैं जो पसली कहलाती हैं। वे पसलियाँ छाती क मध्य में ऊपर की ओर जाने वाली हड्डी मे लगकर स्थित हैं। पीठ की हड्डी मे जो छः सन्धियाँ शेष हैं, उनमे से छ. हड्डियाँ निकल कर दोनो पार्श्वभागों को घेर कर स्थित हैं। वे हृदय के दोनो तरफ छाती से नीचे रहती हैं। जिन लोगों का कुक्षि (पेट) ढीली होती है उनकी ये हड्डियाँ परस्पर मिली हुई नहीं होती है। इन हड्डियों को कडाह कहते हैं। मनुष्यो की कुक्षि दो वितस्ती की होती है और गर्दन चार अङ्गुल की एवं जीभ चार पल की होती है। नेत्र के दोनो गोलक दो पल के होते हैं। हड्डियों के चार खडो से शिर बना होता है। मुख मे बत्तीस दाँत होते हैं। जीभ अपनी अपनी अङ्गुलि के प्रमाण से सात अङ्गुल की होती है। हृदय का मास खण्ड साढे तीन पल का होता है। छाती के भीतर का मास खण्ड जिसे कलेजा कहते हैं वह पचीस पल का होता है। अँतडियाँ दो होती हैं। वे दोनो पाँच पाँच वाम प्रमाण की होती हैं। उनमे से एक स्थूल होती है और दूसरी सूक्ष्म होती है। जो स्थूल अँतडी होती है उसके द्वारा मल बनता है और जो सूक्ष्म है उसके द्वारा मूत्र बनता है। पार्श्व दो होते हैं एक वाम और दूसरा दक्षिण। इनमे से वाम पार्श्व सुख से अन्न पचाता है और दक्षिण पार्श्व दुःख से पचाता है।

आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठि संधिसयं सत्तुत्तरं मम्मसयं तिण्णि अट्ठिदामसयाइं नव ण्हारुसयाइं सत्त सिरा सयाइं पंच पेसी सयाइं नव धमणीओ नवनउइं य रोमकूव सयसहस्साइं विणा केस मंसुणा, सह केसमंसुणा अद्धुट्ठाओ रोमकूवकोडीओ। आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठि सिरासयं नाभिप्पभवाणं उड्ढगामिणीणं सिरमुवगयाणं जाओ रसहरणीओ त्ति

वुच्चंति जाणंसि निरुवग्घाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं य भवइ, जाणंसि उवग्घाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं उवहम्मइ ॥

छाया—आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्टिः सन्धिशतं, सप्तोत्तरं मर्मशतं भवति। त्रीण्यस्थिदामशतानि, नव स्नायु शतानि, सप्तशिराशतानि, पञ्च पेशीशतानि नव धमन्यः, नवनवतिश्च रोमकूपशतसहस्राणि विनाकेशश्मश्रुभिः, सह केशश्मश्रुभिः सार्द्धास्तिस्रो रोमकूपकोटयः। आयुष्मन! अस्मिन शरीरे षष्टि शिराणां, शतं नाभिप्रभवाणां ऊर्ध्वगामिनीनां शिरस्युपगतानां याः रसहरण्य इत्युच्यन्ते। यासां निरुपघातेन चक्षुः श्रोत्रघ्राण जिह्वाबलञ्च भवति। यासाञ्चोपघातेन चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाबलमुपहन्यते।

भावार्थ—हे आयुष्मन्! इस शरीर में १६० सन्धिस्थान होते हैं। अंगुलि आदि हड्डियों के मिलने का जो स्थान है उसे सन्धिस्थान कहते हैं। एवं १०७ मर्मस्थान होते हैं। तथा हड्डियों की ३०० मालायें होती हैं। हड्डियों को बन्धन करने वाली शिरायें जो स्नायु कहलाती हैं वे ९०० होती हैं। तथा सात सौ नसें होती हैं। पांच सौ पेशी होती हैं। जिन मे रस बहता रहता है ऐसी नाड़ियाँ नौ होती हैं। दाढी मूँछ के केशों के बिना निन्नाणवे लाख रोम कूप होते हैं। और दाढी मूछ के केशों को मिला कर साढे तीन कोटि रोमकूप होते हैं। पुरुष के इस शरीर में नाभि से उत्पन्न होने वाली सात सौ शिरायें (नसें) होती हैं उनमे से एक सौ साठ शिरायें नाभि से निकल कर शिर में जाकर मिलती हैं। उनको रसहरणी कहते हैं। ऊपर जाने वाली उन नाड़ियों की सहायता से मनुष्य के नेत्र, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा का बल वृद्धि को प्राप्त होता है। तथा उन नाडियों के नष्ट होने से नेत्र, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा का बल नष्ट हो जाता है।

आउसो! इमम्मि सरीरए सट्ठि सिरासयं नाभिप्पभवाणं अहोगामिणीणं पायतलमुवगयाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं

जंघाबलं भवइ। ताणं चेव से उवग्घाएणं सीसवेयणा अद्धसीसवेयणा मत्थयसूले अच्छीणि अधिज्जंति।

छाया—आयुष्मन्! अस्मिन् शरीरे षष्टिःशिराशतं नाभिप्रभवाणा मधोगामिनीनां पादतलमुपगतानां, यासां निरुपघातेन जघाबल भवति। तासाञ्च तस्योपघातेन शिरोवेदना अर्द्धशिरोवेदना मस्तकशूल अक्षिणी अन्धी भवतः।

भावार्थ—हे आयुष्मन्! इस शरीर मे १६० शिरायें-नाभि से निकल कर नीचे की ओर जाती हुई पैर के तल में मिलती हैं। उन शिराओं की सहायता से जंघा का बल उत्पन्न होता है। उन शिराओं मे जब किसी प्रकार का विकार पैदा हो जाता है तब शिर में पीड़ा होती है। आधे शिर में पीड़ा होती है, मस्तक मे शूल रोग हो जाता है और नेत्र अन्धे हो जाते हैं।

आउसो! इमंमि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं तिरियगामिणीणं हत्थतलमुवगयाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं बाहुबलं हवइ, ताणं चेव से उवग्घाएणं पासवेयणा पुट्ठिवेयणा कुच्छिवेयणा कुच्छिसूले हवइ।

छाया—आयुष्मन्! अस्मिन् शरीरे षष्टिः शिराणां शतं नाभिप्रभवाणां तिर्य्यग्गामिनीनां हस्ततलमुपगतानां यासां निरुपघातेन बाहुबलं भवति। तासाञ्चैव तस्योपघातेन पार्श्ववेदना पृष्ठवेदना कुक्षिवेदना कुक्षिशूलं भवति।

भावार्थ—हे आयुष्मन्! इस शरीर में १६० नाड़ियाँ नाभि से निकल कर तिर्छी जाती हैं और वे हाथ के तल मे जाकर मिल जाती हैं उनके ठीक रहने पर भुजा का बल बढ़ता है और उनमें विकार उत्पन्न होने पर पार्श्व पीड़ा, पृष्ठ पीड़ा, उदर पीड़ा और उदर मे शूल रोग उत्पन्न होता है।

आउसो ! इमस्स जंतुस्स सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं अहो गामिणीणं गुदप्पविट्ठाणं जाणंसि निरुवग्घाएणं मुत्तपुरीसवाउ कम्मं पवत्तइ । ताणं चेव उवग्घाएणं मुत्त पुरीसवाउनिरोहेणं अरिसा खुब्भंति पंडु रोगो हवइ ।

छाया—आयुष्मन् ! अस्य जन्तो. षष्टिः शिराणां शत नाभिप्रभवाणा मधोगामिनीनां गुदप्रविष्टानां यासा निरुपघातेन मूत्रपुरीष वायुकर्म प्रवर्तते । तासाञ्चोपघातेन मूत्रपुरीषवायु निरोधेन अर्शांसि क्षुभ्यन्ति पाण्डुरोगश्च भवति ।

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस जन्तु की नाभि से उत्पन्न होकर नीचे की ओर जाकर गुदा मे मिलने वाली १६० नाड़ियाँ होती हैं । जिनके ठीक रहने पर मूत्र, मल और वायु का निकलना उचित रूप मे होता है और इनके विकृत होने पर मूत्र मल और वायु के निरोध हो जाने से बवासीर की व्याधि और पाण्डुरोग उत्पन्न होता है ।

आउसो ! इमस्स जंतुस्स पणवीसं सिराओ पित्तधारिणीओ पणवीसं सिराओ सिंभधारिणीओ दस सिराओ सुक्कधारिणीओ सत्तसिरासयाइं पुरीसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स । आउसो ! इमस्स जंतुस्स सहिरस्स आढयं वसाए अद्धाढयं मत्थुलुंगस्स पत्थो मुत्तस्स आढयं पुरीसस्स पत्थो पित्तस्स कुडवो सिंभस्स कुडवो सुक्कस्स अद्धकुडवो, जं जाहे दुट्ठं भवइ तं ताहे अइप्पमाणं भवइ, पंचकोट्ठे पुरिसे, छ कोट्ठा इत्थिया, नवसोए पुरिसे, इक्कारस सोया इत्थिया, पंच पेसीसयाइं पुरिसस्स, तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स । (सूत्र १६)

छाया—आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः पंचविंशतिः शिराः पित्तधारिण्यः पचविंशतिः शिराः श्लेष्मधारिण्यः दशशिराः शुक्रधारिण्यः सप्त शिराशतानि पुरुषस्य, त्रिंशदूनाः स्त्रियाः, विंशत्यूनाः पण्डकस्य । आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः रुधिरस्याढकं, वसाया अर्द्धाढकं, मस्तुलुङ्गस्य प्रस्थः, मूत्र-

स्याढक, पुरीषस्य प्रस्थः, पित्तस्य कुडवः । श्लेष्मणः कुडव., शुक्रस्यार्द्ध कुडवः । यद् यदा दुष्टं भवति तत् तदा अतिप्रमाणं भवति । पञ्चकोष्ठः पुरुषः, षट्कोष्ठा स्त्रियः, नवस्रोताः पुरुषः, एकादशस्रोतसः स्त्रियः, पञ्च पेशीशतानि पुरुषस्य, त्रिंशदूनानि स्त्रियाः, विंशत्यूनानि पण्डगस्य॥१६॥

भावार्थ—हे आयुष्मन् ! इस जन्तु के शरीर मे पित्त को धारण करने वाली नाड़ियाँ २५ होती हैं। २५ ही कफ को धारण करने वाली होती हैं, शुक्रधारिणी नाड़ियाँ दश होती हैं। ७०० शिरायें पुरुषों के शरीर मे और ३० कम ७०० स्त्रियो के शरीर मे और २० कम सात सौ नपुंसक के शरीर में होती हैं। हे आयुष्मन् इस मनुष्य के शरीर मे रक्त एक आढक होता है। चर्बी आधा आढक होती है। फिप्फिस एक प्रस्थ होता है। मूत्र एक आढक होता है। पुरीष एक प्रस्थ होता है। पित्त एक कुडव होता है। श्लेष्म एक कुडव होता है। शुक्र आधा कुडव होता है। इनमें से जो जब विकृत होता है तब इनके प्रमाण में न्यूनाधिकता होती है। पुरुष के शरीर में पाच कोष्ठक और स्त्री के शरीर मे छः कोष्ठक होते हैं। पुरुष के शरीर मे नौ छिद्र और स्त्री के शरीर मे ११ छिद्र होते हैं। पुरुष के शरीर मे ५०० पेशियाँ होती हैं और स्त्री के शरीर मे ३० कम ५०० एवं नपुंसक के शरीर में २० कम ५०० पेशियाँ होती हैं।

अब्भिंतरंसि कुणिमं जो, परिअत्तेउ बाहिरं कुज्जा । तं असुइं दट्ठूणं, सयावि जणणी दुगुंछिया ॥८३॥

छाया—अभ्यन्तरे कुणिमं यत्, परावर्त्य बहिः कुर्यात् । तमशुचिं दृष्ट्वा, स्वकापि जननी जुगुप्सेत ॥८३॥

भावार्थ—इस शरीर मे जो अपवित्र मांस है उसको यदि शरीर मे से बाहर निकाला जाय तो अपनी माता भी उसे देख कर घृणा करेगी, दूसरे की तो बात ही क्या है ? ॥८३॥

माणुस्सयं सरीरं, पूइयमं मंससुक्कहड्डेणं । परिसंठवियं सोहइ, अच्छायणगंधमल्लेणं ॥ ८४ ॥

छाया—मानुष्यकं शरीरं, पूतिमद् मांसशुक्रास्थिभिः । परिसंस्थापित शोभते, आच्छादन गन्धमाल्येन ॥८४॥

भावार्थ—यह मनुष्य का शरीर अपवित्र है। मास, शुक्र और हड्डी से बना हुआ है। यह वस्त्र, गन्ध और माला धारण करने से सुशोभित होता है ॥८४॥

इमं चेव य सरीरं सीसघडीमेय मज्जमंसट्ठियमत्थुलुंग सोणियवालुंडयचम्मकोसनासियसिंघाणयधीमलालयं अमणुण्णगं सीसघडीभंजियं गलंतणयणं कण्णोट्ठगंडतालुयं अवालुयाखिल्ल चिक्कणं चिलिचिलियं दंतमलमइलं बीभच्छ-दरिसणिज्जं अंसलगबाहुलगअंगुली अंगुट्ठगनहसंधि संघाय संधियमिणं बहुरसियागारं नालखंधच्छिरा अणेग ण्हारु बहुधमणिसंधिनद्धं पागडउदरकवालं कक्खनिक्खुडं कक्खगकलियं दुरंतं अट्ठिधमणि संताण संतयं सव्वओ समंता परिसवंतं य रोमकूवेहिं सयं असुइं सभावओ परमदुग्गंधि कालिज्जय अंतपित्तजरहियं य फोप्फसफेफसपिलिहोदरगुज्झकुणिम नवछिड्डधिविधिवंतहियियं दुरहिपित्तसिंभमुत्तोसहाययणं सव्वओ दुरंतं गुज्झोरुजाणुजंघापाय संघाय संधियं असुइ कुणिम गंधि, एवं चिंतिज्जमाणं बीभच्छदरिसणिज्जं अधुवं अनियय असासयं सडण पडणविद्धंसणधम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स चइयव्वं निच्छयओ सुट्ठुजाण एयं आइनिहणं एरिसं सव्वमणुयाणं देहं एस परमत्थओ सब्भाओ। (सूत्रम् १७)

छाया—इदञ्चैव शरीर शीर्षघटी मेदोमज्जा मांसमस्तुलुङ्गशोणितवालुण्डक चर्मकोश नासिकामलधिङ्मलालयं अमनोज्ञकं शीर्षघटीभञ्जितं गलन्नयनं कर्णौष्ठगण्डतालुकं अवालुखिल्लचिक्कणं चिगचिगायमानं दन्तमलमलिन वीभत्सदर्शनीयं अंसबाहुङ्गुल्य-ङ्गुष्ठनखसन्धिसङ्घातसन्धितमिदं बहुरसिकागारं वालस्कन्धशिराऽनेक स्नायु बहुधमनि सन्धिनद्धं प्रकटोदरकपालं कक्षनिष्कुटं कक्षागकलित

दुरन्त अस्थिधमनि सन्तान सन्तत सर्वतः समस्तात् परिस्रवच्च रोमकूपैः स्वयमशचि स्वभावतः परमदुर्गन्धि कालिज्जकान्त्रपित्त ज्वरहृदय फोप्फस फिप्फिम प्लीहोदरगुह्य कृमि नवच्छिद्र द्रिग द्रिगाय मान हृदयं दुर्गन्ध पित्तसिभमूत्रौषधायतनं सर्वतो दुरन्त गुह्योरुजानुजङ्घापाद सङ्घातसन्धितम् अशुचिकुणिमगन्धि एवं चिन्त्यमानं बीभत्सदर्शनीयं अध्रुव मनियतमशाश्वतं शटनपटनविध्वसनधर्मं पश्चाद्वा पूर्वं वा अवश्य त्यक्तव्यं निश्चयतः सुष्ठु जानीहि एतद् आदिनिधनम् । इदृशः सर्वमनुजानां देहः । एष परमार्थतः स्वभावः ॥ सूत्र १७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्य का शरीर शिर की खोपड़ी, मेद, मज्जा, मांस, शिर का स्नेह, रक्त, वालुण्डक (शरीर के भीतर का एक अवयव) चर्मकोश, नाक का मल और विष्ठा आदि दूषित मलों का घर है। यह सुन्दरता से वर्जित है। यह शिर की खोपड़ी के मल तथा नेत्र, कान, ओष्ठ, कपोल और तालु के मलो से परिपूर्ण है इसलिये यह अभ्यन्तर प्रदेश में अत्यन्त पिच्छिल है तथा धूप आदि लगनेपर बाहर भी पसीना होजाने से पिच्छिल होजाता है। दातों के मल से यह और अधिक मलिन है। जब रोग आदि के द्वारा मनुष्य कृश हो जाता है उस समय इस शरीर का दृश्य और अधिक बीभत्स (घृणास्पद) हो जाता है। भुजा, अङ्गुलियाँ, अङ्गुष्ठ और नखो की सन्धियो से यह शरीर जोडा हुआ है। अनेक प्रकार के तरल रसों से यह परिपूर्ण है। तथा कंधे की नसें और हड्डियों को बॉध रखने वाली अनेक शिरायें एव हड्डियो की सन्धियों से यह शरीर बँधा हुआ है। इस शरीर का उदर कडाह के समान है, जिसे सभी लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। जैसे पुराने सूखे वृक्ष मे कोटर होता है उसी तरह दोनों भुजाओ के मूल मे कक्ष प्रदेश है। उस कक्ष प्रदेश में बुरे लगने वाले बाल भरे होते हैं। इसका विनाश बहुत बुरी तरह होता है। यह हड्डियो और शिराओं के समूह से भरा हुआ है। जिस तरह सच्छिद्र घडे से जल सदा निकलता रहता है इसी तरह इस शरीर के रोम कूपो से हमेशा पसीने का जल

निकलता रहता है। इसके सिवाय नाक आदि छिद्रों से भी मल निकलता रहता है। यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र और दुर्गन्धि से परिपूर्ण है। इसमे कलेजा, आँतड़ी, पित्त, हृदय, फेफड़ा, सीहा और उदर ये गुप्त मांस पिण्ड होते हैं एवं नव छिद्र होते हैं। इस शरीर में हृदय बराबर धड़कता रहता है। यह पित्त, श्लेष्म और मूत्र आदि दुर्गन्ध वाले पदार्थों से तथा खाये हुए औषधों से परिपूर्ण होता है। इस शरीर के सभी भागों में अन्त का भाग बुरा होता है तथा इस का विनाश बहुत ही बुरी तरह होता है। गुदा, उरू, जानु, जङ्घा और पैरो के समूह से यह शरीर जुडा हुआ है। यह अशुचि तथा मास के गन्ध से युक्त है। यद्यपि यह अज्ञानवश अच्छा दीखता है तथापि विचार करने पर भयङ्कर रूप युक्त है। यह अध्रुव, अशाश्वत और अनियत है यानी विनाशी है। कुष्ट आदि व्याधि उत्पन्न होने पर इसकी अंगुलियाँ गल कर गिर जाती हैं तथा तलवार आदि का घात होने पर भुजा आदि अङ्ग कट जाते हैं एवं चय होजाना इसका स्वभावतः सिद्ध है। यह कुछ दिन के पश्चात् या पूर्व किसी दिन अवश्य ही नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य शरीर आदि और अन्त वाला है। जैसा पहले वर्णन किया गया है वैसा ही इसका स्वभाव है॥

सुक्कंम्मि सोणियंमि य, संभूओ जणणि कुच्छि मज्झंमि। तं चेव अमिज्झरसं, नवमासे घुंटियं संतो॥८५॥

शुक्रे शोणिते च सम्भूतः जननी कुक्षिमध्ये। तच्चैवामेध्यरसं, नवसु मासेषु पिबन् सन्॥ ८५॥

भावार्थ—माता के उदर मे शुक्र और शोणित के संयोग से यह उत्पन्न होकर उसी अपवित्र रस का पान करता हुआ नव मास तक गर्भ मे स्थिर रहता है॥ ८५॥

जोणीमुहनिप्फिडिओ, थणगच्छीरेण वड्ढिओ जाओ। पगई अमिज्झमइओ, कह देहो धोइउं सक्को॥८६॥

छाया—योनिमुखनिष्फिटितः, स्तनकक्षीरेण वर्धितो जातः । प्रकृत्या मेध्यमयः कथ देहो धावितुं शक्यः ॥ ८६ ॥

भावार्थ—यह माता की योनि से निकल कर बाहर आया है और स्तन पान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ है। यह स्वभाव से ही अपवित्रतामय है, इसे धोकर शुद्ध करना शक्य नहीं है ॥ ८६ ॥

हा असुइसमुप्पण्णा य, निग्गया य जेण चेव दारेणं । सत्ता मोह पसत्ता, रमंति तत्थेव असुइ दारंमि ॥८७॥

छाया—हा अशुचि समुत्पन्नाश्च, निर्गताश्च येन चैव द्वारेण । सत्वाः, मोहप्रसक्ताः रमन्ते तत्रैवाशुचिद्वारे ॥ ८७ ॥

भावार्थ—हा, शोक ? यह प्राणी अपवित्रतामय स्थान मे उत्पन्न होकर जिस द्वार से निकल कर बाहर आया है, मोहवश युवा अवस्था में उसी अशुचि द्वार में रमण करता है ॥ ८७ ॥

किह ताव घर कुडीरी, कविसहस्सेहिं अपरितंतेहिं । वण्णिजइ असुइबिलं, जघणंति सकज्जमूढेहिं ॥८८॥

छाया—कथन्तावत् गृहकुड्याः, कविसहस्रैरपरितान्तैः । वर्ण्यते ऽशुचि बिलं, जघनमिति स्वकार्य्यमूढैः ॥ ८८ ॥

भावार्थः—जो अपवित्रता से परिपूर्ण बिल (योनि) से संयुक्त है ऐसे स्त्री के जघन को कविजन अश्रान्त भाव से क्यों कर वर्णन करते हैं ? वस्तुतः वे अपने स्वार्थवश मूढ हो रहे है ॥ ८८ ॥

रागेण न जाणंति, वराया कलमलस्स निद्धमणं । ताणं परिणंदंता, फुल्लं नीलुप्पलवणं व ॥८९॥

छाया—रागेण न जानन्ति, वराकाः कलमलस्य निर्धमनम् । तत् परिनन्दन्ति, फुल्ल नीलोत्पलवनमिव ॥ ८९ ॥

भावार्थः—विचारे कवि रागवशीभुत होकर नहीं जानते हैं कि— यह स्त्री का जघन अपवित्र मल की थैली है। इसीलिये अत्यन्त

विषयासक्त वे इसका वर्णन करते हैं और प्रफुल्लित नीलकमल के समान इसको मनोहर बतलाते हैं ॥ ८६ ॥

कित्तियमित्तं वण्णे, अमिज्झमइयंमि वच्चसंघाए । रागो हु न कायव्वो, विरागमूले सरीरंमि ॥६०॥

छाया—कियन्मात्रं वर्ण्ये, अमेध्यमये वर्चस्कसङ्घाते । रागो हि न कर्त्तव्यः, विरागमूले शरीरे ॥ ६० ॥

भावार्थः—कहा तक वर्णन किया जाय, यह शरीर अपवित्रता से भरा है, यह विष्ठा की राशि है तथा घृणा के योग्य है। अतः बुद्धिमान् पुरुप को इसमें राग नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥

किमिकुलसय संकिण्णे, असुइमचुक्खे असासयमसारे । सेय मल पुव्वडंमी, निव्वेयं वच्चह सरीरे ॥६१॥

छाया—कृमिकुलशतसङ्कीर्णे, अशुच्यचूक्षे अशाश्वतासारे । स्वेदमलपूर्वके, निर्वेद व्रजत शरीरे ॥ ६१ ॥

भावार्थः—यह शरीर सैंकड़ो कृमिकुल यानी कीड़ो से भरा हुआ है तथा अपवित्र मल से परिपूर्ण परम अशुद्ध है। एवं विनाशी और साररहित है। दुर्गन्धपूर्ण स्वेद मे भीगा हुआ है। अतः मनुष्य को इससे विरक्त रहना चाहिये ॥ ६१ ॥

दंत मल-कण्णगूहगसिंघाण मले य, लालमलबहुले । एयारिसे वीभच्छे, दुगुंछणिज्जंमि को रागो ॥६२॥

छाया—दन्तमलकर्णगूथक सिंघाण मले च, लालमलबहुले । एतादृशे वीभत्से, जुगुप्सनीये को रागः ॥ ६२ ॥

भावार्थः—यह शरीर दाँतों के मल, कान के मल, नाक के मल और विष्ठा के मल मे परिपूर्ण है। तथा लाला यानी मुख के मलसे भरा हुआ है। अतः इस प्रकार वीभत्स (घृणास्पद) और निन्दनीय शरीर मे क्या प्रेम किया जाय ?

को सडण पडण विद्धंसिण, विसण चयण मरण धम्मंमि । देहंमि अहिलासो, कुहिय कढिण कट्ठभूयंमि॥६३॥

छाया—कः शटन पतन विकिरण विध्वंसन च्यवन मरणधर्मे । देहेऽभिलाष , कुथित कठिन काष्ठ भूते ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यह शरीर कुष्ट आदि व्याधि होने पर गल कर गिर जाता है। तलवार आदि के प्रहार होने पर कट कर गिर जाता है। यह स्वभाव से ही नश्वर है। रोग आदि होने पर क्षीण हो जाता है। इसके हाथ पैर आदि अवयव नष्ट हो जाते हैं तथा एक दिन पूर्ण रूपेण यह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सड़े हुए कठिन काष्ठ की तरह इस शरीर में अभिलाप रखना क्या है ? ॥ ६३ ॥

कागसुणगाण भक्खे, किमिकुलभत्ते य वाहिभत्ते य । देहंमि मच्छभत्ते, सुसाणभत्तम्मि को रागो ॥६४॥

छाया—काकश्वानयोर्भक्ष्ये, कृमिकुल भक्तेच व्याधिभक्ते च । देहे मत्स्यभक्ते, श्मशानभक्ते च को रागः ॥ ६४ ॥

भावार्थ—यह शरीर काक और कुत्तों का भक्ष्य है तथा कीडे, व्याधि और मछलियों का भी भोजन है तथा श्मशान मे रहने वाले गीध आदि का भक्ष्य है ऐसे शरीर में राग रखना क्या है ? ॥ ६४ ॥

असुइ अमिज्झ पुण्णं कुणिमकलेवर कुडिं परिसवंति । आगंतुयसंठवियं, नवछिड्डमसासयं जाणे । ॥६५॥

छाया—अशुचि अमेध्यपूर्णं, कुणिम कलेवर कुटीं परिस्रवदिति । आगन्तुकसंस्थापितं, नवच्छिद्रमशाश्वतं जानीहि ॥ ६५ ॥

भावार्थः—यह शरीर अपवित्र है, अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है। मांस और हड्डी का घर है। चारों ओर इस शरीर मे मल निकलता रहता है। माता पिता के रज वीर्य से उत्पन्न हुआ है। नव छिद्रों से यह युक्त है। यह स्थिर नहीं हैं ऐसा जानो ॥ ६५ ॥

पिच्छसि मुहं सतिलयं, सविसेसं रायएण अहरेणं । सकडक्खं सवियारं, तरलच्छिं जुव्वणित्थीए ॥६६॥

छाया—पश्यसि मुखं सतिलकं, सविशेष रागवताधरेण । सकटाक्षं सविकारं, तरलाक्ष युवस्त्रियाः ॥ ६६ ॥

भावार्थ—तुम तिलक और कुंकुम आदि के लेपन से सुशोभित तथा पान की लालिमा से रञ्जित ओष्ठ से मनोहर युवती स्त्री के मुख को काम विकार के साथ सकटाक्ष और चञ्चल नेत्रो द्वारा देखते हो ॥ ६६ ॥

पिच्छसि बाहिरमट्ठं, न पिच्छसि उज्जरं कलिमलस्स । मोहेण नच्चयंतो, सीसघडी कंजियं पियसि ॥६७॥

छाया—पश्यसि बाह्यमर्थं, न पश्यसि मध्यगत कलिमलस्य । मोहेन नृत्यन् शीर्षघटी काञ्जिक पिबसि ॥ ६७ ॥

भावार्थ—हे भाई ! तुम बाहर के पदार्थ को देखते हो, परन्तु अन्दर अपवित्र मल भरा हुआ है उसे नहीं देखते । विषय के मोहवश नाचने लगते हो और अपवित्र मस्तक के रस को चुम्बनादि द्वारा पान करते हो ॥ ६७ ॥

सीसघडी निग्गालं, जं निट्ठुहसि दुगुंछसि जं य । तं चेव रागरत्तो मूढो, अइमुच्छिओ पियसि ॥६८॥

छाया—शीर्षघटी निर्गाल, यन्निष्ठीवसि जुगुप्ससे यच्च । तच्चैव रागरक्तो, मूढोऽतिमूर्च्छितः पिबसि ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जिस मुख के थूक को तुम स्वय बाहर थूक देते हो और जिससे घृणा करते हो उसी निन्दित पदार्थ को कामासक्त तथा अत्यन्त मोहित होकर तीव्र आसक्ति के साथ पान करते हो ॥ ६८ ॥

पूइय सीसकवालं, पूइयनासं य पूइदेहं य । पुइयछिड्डविछिड्डं, पुइयचम्मेण य पिणद्धं ॥ ६६ ॥

छाया—पूतिकशीर्षकपालं, पूतिकनासञ्च पूतिदेहञ्च । पूतिकच्छिद्रविच्छिद्रं, पूतिकचर्मणा च पिनद्धम् ॥ ६६ ॥

भावार्थ—शिर की खोपड़ी अपवित्र है, नासिका अपवित्र है, सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग अपवित्र हैं तथा छोटे छोटे छिद्र भी अपवित्र हैं तथा अपवित्र चमड़े मे यह समस्त शरीर ढका हुआ है ॥ ६६ ॥

अंजण गुण सुविसुद्धं, एहाणुव्वट्टणगुणेहिं सुकुमालं, पुप्फुम्मीसियकेसं, जणेइ बालस्स तं रागं ॥ १०० ॥

छाया—अञ्जनगुणसुविशुद्धं, स्नानोद्वर्तनगुणैः सुकुमार । पुष्पोन्मिश्रितकेश, जनयति बालस्य तद्रागम् ॥ १०० ॥

भावार्थः—आँखें अञ्जन लगाने से तथा अङ्ग प्रत्यङ्गो मे भूषण धारण करने से एव स्नान उद्वर्तन आदि शरीर के संस्कारों से तथा केशो में पुष्प धारण करने से कृत्रिम सुन्दरता से पूर्ण नायिका का मुख अज्ञानी जीव को राग उत्पन्न करता है ॥ १०० ॥

जं सीसपूरउत्ति य, पुप्फाइं भणंति मंदविन्नाणा । पुप्फाइं चिय ताइं, सीसस्स य पूरयं सुणह ॥ १०१ ॥

छाया—यानि शीर्षपूरकानीति च, पुष्पाणि भणन्ति मन्दविज्ञानाः । पुष्पाण्येव तानि, शीर्षस्य च पूरकं शृणुत ॥ १०१ ॥

भावार्थः—कामासक्त पुरुष जिन पुष्पो को मस्तक का पूरक यानी भूषण बतलाते हैं वे पुष्प वस्तुतः मस्तक के पूरक नहीं हैं वे तो पुष्प ही है । मस्तक के पूरक यानी पूर्ण करने वाले क्या पदार्थ हैं ? सो मैं बतलाता हूँ आप सुनें ॥ १०१ ॥

मेओ वसा य रसिया, खेल सिंघाण ए य छुभ एयं । अह सीस पूरओ मे, नियग सरीरंमि साहीणो ॥ १०२ ॥

छाया—मेदो वसा च रसिका, खेल सिंघानकश्च क्षिपैतान् । अथ शीर्षपूरको भवता, निजक शरीरे स्वाधीनः ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मेद, चर्बी, रसिका (पीव), खंखार और नाक का मल ये सब आपके शिर को पूरण करने वाले हैं, ये सब आपके आधीन हैं अतः अपने शरीर के ऊपर इन्हें उठा उठा कर आप डाल लीजिये । बस इससे अपन शिर को भूपित हुआ समझ लीजिये ॥ १०२ ॥

सा किर दुप्पडिपूरा, वच्चकुटी दुप्पया नवच्छिद्दा । उक्कडगंधविलित्ता, बालजणो अइमुच्छियं गिद्धो ॥१०३॥

छाया—सा खलु दुष्प्रतिपूरा, वर्चस्कुटी द्विपदा नवच्छिद्रा । उत्कटगन्धविलिप्ता, बालजनोऽतिमूर्च्छितं गृद्धः ॥१०३॥

भावार्थ—यह शरीर विष्ठा की कुटी है। इसका पूरण करना अशक्य है। यह दो पैर और नव छिद्रों से युक्त है। इसमें असह्य दुर्गन्ध भरा हुआ है तथापि अज्ञानी जन इस कुत्सित शरीर में अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं ॥१०३॥

जं पेमरागरत्तो, अवयासेऊण गूढमुत्तोलिं । दंतमलचिक्कणंगं, सीसघड़ीकंजियं पियसि ॥१०४॥

छाया—यस्मात् प्रेमरागरक्तः, अवकाश्य पुनः गूढ मुत्तोलिम् । दन्तमलचिक्कणाङ्गं, शीर्षघटीकाञ्जिकं पिबसि ॥ १०४ ॥

भावार्थ—अज्ञानी जीव कामराग से अनुरञ्जित होकर नायिका की योनि और अपने लिंग को उघाड़ कर दाँत तथा शरीर के मल से चिक्कण शरीर का आलिंगन करते हैं। तथा शिर के खट्टे अपवित्र रस को पान करते हैं ॥ १०४ ॥

दंतमुसलेसु गहणं, गयाण मंसे य ससयमीयाणं । बालेसु चमरीणं, चम्मणहे दीवियाणं य ॥ १०५ ॥

छाया—दन्तमुशलेषु ग्रहणं, गजानां मांसे च शशकमृगाणां । बालेषु च चमरीणां, चर्मनखे द्वीपिकानाञ्च ॥१०५॥

भावार्थ—मनुष्य गण दाँतों के लिये हाथी को और मांस के लिये शशक और मृग को तथा बाल के लिये चमरी गाय को और चर्म नख के लिये व्याघ्र को ग्रहण करते हैं। अतः इनके अंग तो सर्वसाधारण के भोग के काम में आते हैं परन्तु मनुष्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग भोग में नहीं आते हैं। इसलिए मनुष्य को इस शरीर में आदर न रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ १०५ ॥

पूइयकाए य इहं, चवणमुहे निच्चकालावीसत्थो । आइक्खसु सब्भावं, किम्मिसि गिद्धो तुमं मूढ ॥१०६॥

छाया—पूतिक काये चेह, च्यवनमुखे नित्यकालविश्वस्त । आख्याहि सद्भावं, किमसि गृद्धस्त्वं मूढ ! ॥१०६॥

भावार्थ—हे मूर्ख! यह शरीर अपवित्र पदार्थों का घर है तथा मरणशील है। इसमें सदा विश्वास करते हुए तुम क्यों आसक्त हो रहे हो ? इसका सत्य कारण बताओ ॥ १०६ ॥

दंतावि अकज्जकरा, बाला वि य वड्ढमाण वीभच्छा। चम्मंवि य वीभच्छं, भण किं तंसि तं गओ रागं ॥१०७॥

छाया—दन्ता अप्यकार्य्यकराः, वाला अपि वर्धमानाः बीभत्साः। चर्माऽपि बीभत्सं, भण किं तस्मिन् त्वं गतो रागम् ॥१०७॥

भावार्थः—दाँत भी किसी काम के नहीं हैं यानी अपवित्र हैं तथा बाल भी बढे हुए घृणा के योग्य ही हैं एवं चर्म भी घृणास्पद है फिर बतलाओ तुम इस शरीर में क्यों राग रखते हो ? ॥ १०७ ॥

सिंभे पित्ते मुत्ते, गूहंमि य वसाइ दंत कुंडीसु। भणसु किमत्थं तुज्झं, असुईमि विवड्ढिओ रागो ॥ १०८ ॥

छाया—सिम्भे पित्ते, मूत्रे, गूथे च वसायां दन्तकुडयासु। भण किमर्थं तवाशुचौ, विवर्धितः रागः ॥ १०८ ॥

भावार्थः—यह शरीर कफ, पित्त, मूत्र, विष्ठा, चर्बी और हड्डियो का घर है। बतलाओ इस अपवित्र वस्तु में तुम्हारा राग क्यो अधिक हुआ है ॥ १०८ ॥

जंघट्ठियासु ऊरू, पइट्ठिया तट्ठिया कडी पिट्ठी। कडियट्ठिवेढियाइं, अट्ठारसपिट्ठि अट्ठीणि ॥ १०६ ॥

छाया—जङ्घास्थिकयोरूरू, प्रतिष्ठितौ तत्स्थिता कटिपृष्ठिः। कटयस्थि वेष्ठितान्यष्टादश पृष्ठ्यस्थीनि ॥ १०६ ॥

भावार्थः—जङ्घा की हड्डियों के ऊपर ऊरु स्थित है और ऊरु के ऊपर कटिभाग स्थित है तथा कटि के ऊपर पृष्ठभाग स्थित है और पृष्ठ में अठारह हड्डियाँ वेष्ठित हैं। शरीर का यही स्वरूप है ॥ १०६ ॥

दो अच्छि अट्टियाइं, सोलस गीवट्टिया मुणेयव्वा । पिट्ठी पइट्टियाओ, वारस किल पंसुली हुँति ॥ ११० ॥

छाया—द्वे अक्ष्यस्थिनी, षोडशग्रीवास्थीनि ज्ञातव्यानि । पृष्ठिप्रतिष्ठिताः द्वादश, किल पंशुल्यो भवन्ति ॥ ११० ॥

भावार्थः—दो नेत्र की हड्डियाँ होती हैं और सोलह ग्रीवा की हड्डियाँ होती हैं । एवं पीठ में स्थित बारह पसलियाँ होती हैं ।

अट्ठिय कढिणे, सिरण्हारुबंधणे मंसचम्मलेवंमि । विट्ठाकोट्ठागारे, को वच्च घरोवमे रागो ॥ १११ ॥

छाया—अस्थिकठिने, शिरास्नायुबन्धने मांसचर्मलेपे । विष्ठाकोष्ठागारे, को वर्चोगृहोपमे राग ? ॥ १११ ॥

भावार्थः—हड्डियो के होने से जो कठिन है यथा शिरा और नसों के द्वारा जो बँधा हुआ है एवं चमड़ा और मांस से जो लिप्त है, तथा विष्ठा का जो कोष्ठागार है ऐसे पाखाने के घर के तुल्य इस शरीर मे राग करना क्या है ? ॥ १११ ॥

जह नाम वच्चकूवो, णिच्चं भिणिभिणिभणंतकायकली । किमिएहिं सुलुसुलायइ, सोएहिं य पूइयं वहइ ॥ ११२ ॥

छाया—यथानाम वर्चःकूपो, नित्य भिणिभिणिभणत्काकलि । कृमिभिः सुलुसुलायते, स्रोतोभिश्च पूतिकं वहति ॥ ११२ ॥

भावार्थः—जैसे विष्ठा से भरा हुआ कुआँ होता है, उसके पास काँव काँव करते हुए कौए परस्पर लड़ते रहते हैं और विष्ठा के कीडे उसके अन्दर चलते रहते हैं जिससे सुल सुल शब्द होता रहता है तथा बदबूदार स्रोत बहते रहते हैं । उस कूप के समान ही इस शरीर की दशा रोगी अवस्था में और मरने पर होती है ॥ ११२ ॥

उद्धियणयणं खगमुहविकड्डियं, विपइण्णबाहुलयं । अंत विकड्डयमालं, सीस घडी पागडी घोरं ॥ ११३ ॥

छाया—उद्धृतनयनं, खगमुखविकर्षितं विप्रकीर्णबाहुलतम् । अन्तर्विकर्षितमाल, शीर्षघटी प्रकटघोरम् ॥ ११३ ॥

भावार्थः—मरने के बाद इस शरीर के नेत्र को निकाल कर पत्ती अपनी चोंच से नोच लेते हैं। लता की तरह भुजा पृथिवी पर पड़ी रहती है। गीदड़ अँतडी निकाल लेते हैं। खोपड़ी घड़े के समान पड़ी रहती है। उस समय यह शरीर बहुत ही भयङ्कर दिखाइ देता है ॥ ११३ ॥

भिणिभिणिभणंतसद्दं, विसप्पियं सुलुसुलित मंमोडं । मिसिमिसिमिसंतकिमियं, थिविथिविथिवियंतबीभच्छं ॥ ११४ ॥

छाया—भिणिभिणिभणच्छब्दं, विसर्पित सुलुसुलत्मांसपुटम् । मिसिमिसिमिसत्क्रमिकं, थिविथिविथिवदन्त्रबीभत्सम् ॥ ११४ ॥

भावार्थः—जब यह प्राणी मर जाता है तब इसके मृत कलेवर के ऊपर मक्खियाँ भिन् भिन् करती हैं, और अङ्ग प्रत्यङ्ग ढीले होकर सूज जाते है। मास समूह सड़ कर सल सल करता है और उसमें कीड़े उत्पन्न होकर चलते हैं जिससे मिसमिस का शब्द होता है और अँतड़ी सड़ कर सलसल करती है। इस कारण वह कलेवर बहुत ही घृणितरूप मे दीखता है ॥ ११५ ॥

पागडियपंसुलीयं, विगरालं सुक्कसंधिसंघायं । पडियं निच्चेयणयं, सरीर मेयारिसं जाण ॥ ११५ ॥

छाया—प्रकटित पांशुलिक, विकराल शुष्कसन्धिसङ्घातम् । पतितं निश्चेतनकं, शरीर मेतादृशं जानीहि ॥ ११५ ॥

भावार्थः—मरण के पश्चात् यह शरीर किसी स्थान मे अचेतन होकर पड़ा रहता है, इसकी सारी पसलियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। सन्धियाँ सूखी हुई होती हैं इसलिये यह बहुत ही भयङ्कर दिखाई देता है। हे भाई ! तुम शरीर को इसी तरह का समझो ॥ ११५ ॥

वचाउ असुइयरं, नवहिं सोएहिं परिगलंतेहिं । आमगमल्लगरूवे, निव्वेयं वच्चह सरीरे ॥ ११६ ॥

छाया—वर्चस्कादशुचितरं, नवभिः स्रोतोभिः परिगलद्भिः । आमक मल्लकरूपे, निर्वेदं व्रजत शरीरे ॥ ११६ ॥

भावार्थः—यह शरीर विष्ठा के संसर्ग से तथा नव द्वारों से मल के निकलते रहने से महा अशुद्ध है। यह कच्चे घड़े के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है, इसलिये इससे विरक्त होजाना चाहिये ॥ ११६ ॥

दो हत्था दो पाया, सीसं उच्चंपियं कवंधंमि । कलमल कोट्ठागारं, परिवहसि दुयादुयं वच्चं ॥ ११७ ॥

छाया—द्वौ हस्तौ द्वौ पादौ, शीर्षं उच्चम्पितः कबन्धे । कलमलकोष्ठागारं, परिवहसि द्रतं द्रतं वर्चः ॥ ११७ ॥

भावार्थ—दो हाथ दो पैर और शिर इस धड़ में जोडा हुआ है। यह मल का कोष्ठागार है। तुम विष्ठा को लिये हुए क्यों शीघ्रता पूर्वक विचरते हो? ॥ ११७ ॥

तं य किर रूववंतं, वच्चंतं रायमग्गमोइएणं । परगंधेहिं सुगंधयं, मएणंतो अप्पणो गंधं ॥ ११८ ॥

छाया—तच्च किल रूपवद्, व्रजद्राजमार्गं प्राप्तम् । परगन्धैः सुगन्धकं, मन्यमान आत्मनो गन्धम् ॥ ११८ ॥

भावार्थः—जिसका स्वरूप बताया गया है ऐसे इस शरीर को राजमार्ग के ऊपर जाते हुए देख कर तुम इसे रूपवान् मानते हो तथा अन्य पदार्थों के गन्ध से सुगन्धित बने हुए इसके गन्ध को निज का गन्ध मानते हो ॥ ११८ ॥

पाडलचंपयमल्लिय अगरुयचंदणतुरुक्कवामीसं । गंध समोयरन्तं, मएणंतो अप्पणो गंधं ॥ ११९ ॥

छाया—पाटलचम्पकमल्लिकागुरुकचन्दनतुरुष्क व्यामिश्रम् । गन्धं समास्तरन्त, मन्वान आत्मनो गन्धम् ॥ ११९ ॥

भावार्थः—गुलाब, चम्पा, चमेली, अगर, चन्दन और कस्तुरी के संयोग से उत्पन्न गन्ध चारों तरफ फैल रहा है, उसे तुम अपना गन्ध मान कर प्रसन्न होते हो ॥ ११९ ॥

सुहवाससुरहिगंधं, वायसुहं अगरुगंधियं अंगं। केसा ण्हाणसुगंधा, कयरो ते अप्पणो गंधो ॥ १२० ॥

छाया—शुभवाससुरभिगन्ध, वातसुखमगुरुगन्धितमङ्गम्। केशाः स्नानसुगन्धाः, कतरस्ते आत्मनो गन्धः ॥ १२० ॥

भावार्थः—तुम्हारा अङ्ग सुगन्धित चूर्ण लगाने से तथा अगर के धूप से धूपित होने से पर-निमित्तवश उत्तम गन्ध युक्त प्रतीत होता है। पवन के सयोग से वह शीतल सुखदायी प्रतीत होता है एवं तुम्हारे केश स्नान करने के पश्चात् सुगन्ध तैलादि के लेपन से सुगन्धित हो रहे हैं। बताओ इनमें तुम्हारा कौनसा अपना गन्ध है ? ॥ १२० ॥

अच्छिमलो कण्णमलो, खेलो सिंघाणओ य पूओ य। असुई मुत्त पुरीसो, एसो ते अप्पणो गंधो ॥ १२१ ॥

छाया—अक्षिमलः कर्णमलः, खेलः सिंहानकश्च पूतिकश्च। अशुची मूत्रपुरीषौ, एष ते आत्मनो गन्धः ॥ १२१ ॥

भावार्थः—आँखों का मल, कानों का मल, खखार, नाक का मल, पीव (रस्सी) और अशुचि मूत्र और विष्ठा ये ही सब तुम्हारे अपने गन्ध हैं ॥ १२१ ॥

जाओ चिय इमाओ इत्थियाओ अणेगेहिं कइवर सहस्सेहिं विविहपासपडिबद्धेहिं कामरागमोहेहिं वण्णियाओ ताओ वि एरिसाओ, तंजहा, १ पगइविसमाओ, २ पियवयणवल्लरीओ, ३ कइयवपेमगिरितडीओ, ४ अवराहसहस्स घरणीओ, ५ पभवो सोगस्स, ६ विणासो बलस्स, ७ सूणा पुरिसाणं, ८ णासो लज्जाए, ९ संकरो अविणयस्स, १० णिलयो णियडीणं, ११ खणी वइरस्स, १२ सरीरं सोगस्स, १३ भेओ मज्जायाणं, १४ आसाओ रागस्स, १५ णिलओ दुच्चरियाणं, १६ माईए

संमोहो, १७ खलणा णाणस्स, १८ चलणं सीलस्स, १६ विग्घो धम्मस्स, २० अरी साहूणं, २१ दूसणं आयारपंत्ताणं, २२ आरामो कम्मरयस्स, २३ फलिहो सुखमग्गस्स, २४ भवणं दरिद्दस्स, २५ अवि याओ इमाओ आसीविसो विव कुवियाओ, २६ मत्तगओ विव मयणपरवसाओ, २७ वाग्घीव दुट्ठहियया‍ओ २८ तणच्छन्न कूवो विव अप्पगासहिययाओ, २६ मायाकारओ विव उवयारसयबंधण पउत्तीओ, ३० आयरियसविहि विव बहुगिज्झ सब्भावाओ, ३१ फुंफुया विव अंतोदहण सीलाओ, ३२ नग्गयमग्गो विव अणवट्ठियचित्ताओ, ३३ अंतो दुट्ठवणो विव कुहियहिययाओ, ३४ किण्हसप्पो विव अविस्ससणिज्जाओ, ३५ संघारो विव छण्णमायाओ, ३६ संज्झब्भरागो विव मुहुत्तरागाओ, ३७ समुद्द वीचि विव चलस्सब्भावाओ, ३८ मच्छो विव दुप्परियत्तण सीलाओ, ३६ वाणरो विव चलचित्ताओ, ४० मच्चू विव निव्विसेसाओ, ४१ कालो विव णिरणुकंपाओ, ४२ वरुणो विव पास हत्थाओ, ४३ सलिल मिव णिण्णगामिणीओ, ४४ किवणो विव उत्ताण हत्थाओ, ४५ णरओ विव उत्तासणिज्जाओ, ४६ खरो विव दुस्सीलाओ, ४७ दुट्ठस्सो विव दुद्दमाओ, ४८ वालो विव मुहुत्तहिययाओ, ४६ अंधयारमिव दुप्पवेसाओ, ५० विसवल्ली विव अणल्लियणिज्जाओ, ५१ दुट्ठगाहा विव वावी अणवगाहाओ, ५२ ठाणभट्ठो विव इस्सरो अप्पसंसणिज्जाओ, ५३ किंपागफलमिव मुहमहुराओ, ५४ रित्त मुट्ठी विव बाललोभणिज्जाओ, ५५ मंस पेसी गहणमिव सोवद्दवाओ, ५६ जलियचुडिली विव अमुच्चमाण दहण सीलाओ, ५७ अरिट्ठमिव दुल्लंघणिज्जाओ, ५८ कूड करिसावणो विव कालविसंवायण सीलाओ, ५६ चंडसीलो विव दुक्खरक्खियाओ, ६० अइविसाओ, ६१ दुगुंच्छियाओ, ६२ दुरुवचाराओ, ६३ अगंभीराओ, ६४ अविस्ससणिज्जाओ, ६५ अणवत्थियाओ, ६६ दुक्ख

रक्खियाओ, ६७ दुक्खपालियाओ, ६८ अरइकराओ, ६६ कक्कसाओ, ७० दड्ढवेराओ, ७१ रूव सोहग्गमओमत्ताओ, ७२ भुयगगइकुडिलहिययाओ, ७३ कंतारगइट्ठाण भूयाओ, ७४ कुलसयणमित्तभेयणकारियाओ, ७५ परदोस पर-गासियाओ, ७६ कयग्घाओ, ७७ बलसोहियाओ, ७८ एगंतहरणकोलाओ, ७६ चंचलाओ, ८० जोइ भंडोवरागो विव मुहराग विरागाओ, ८१ अवि याइं ताओ अंतरंग भंगसयं, ८२ अरज्जुओ पासो, ८३ अदारुया अडवी, ८४ अणलस्स णिलओ, ८५ अइक्खा वेयरणी, ८६ अणामिया वाही, ८७ अवियोगो विप्पलाओ, ८८ अरूव उवसग्गो, ८६ रइवंतो चित्त विब्भमो, ६० सव्वंगओ दाहो, ६१ अणब्भया वज्जासणी, ६२ असलिल प्पवाहो, ६३ समुद्दरओ।

छाया—या एव इमाः स्त्रियः अनेकैः कविवर सहस्त्रैः विविधपाश प्रतिबद्धैः कामरागमोहैः वर्णिताः। ता अपि ईदृश्यः तद् यथा—प्रकृतिविषमाः, प्रियवचनवल्लर्य्यः, कैतवप्रेमगिरितटयः, अपराधसहस्रगृहाणि, प्रभवः शोकस्य, विनाशो बलस्य, शूना पुरुषाणाम्, नाशो लज्जायाः, संकरोऽविनयस्य, निलयो निकृतीनाम्, खनिर्वैरस्य, शरीर शोकस्य, भेदो मर्य्यादायाः, आश्वासो रागस्य, निलयो दुश्चरितानाम्, मातृकायाः समूहः, स्खलना ज्ञानस्य, चलन शीलस्य, विघ्नो धर्मस्य, अरिः साधूनाम्, दूषणमाचारोपपन्नानाम्, आरामः कर्मरजसः, परिघो मोक्षमार्गस्य, भवनं दारिद्र्यस्य, अपि चेमाः आशीविष इव कुपिताः, मत्तगज इव मदनपरवशाः, व्याघ्रीव दुष्टहृदयाः, तृणच्छन्नकूप इवाप्रकाशहृदयाः, मायाकारक इवोपचारशतबन्धनप्रयोक्त्र्य, आचार्य सविधमिव बहु ग्राह्यसद्भावाः, फुंफक इवान्तर्दहनशीलाः, नगमार्ग इवानवस्थितचित्ताः, अन्तर्दुष्टव्रण इव कुथितहृदयाः, कृष्णसर्प इवाविश्वसनीया, संहार इव छन्नमायाः, सन्ध्याभ्रराग इव मुहूर्त रागाः, समुद्र-वीचीव चलस्वभावा, मत्स्य इव दुष्परिवर्तनशीलाः, वानर इव चलचित्ताः, मृत्युरिव निर्विशेषाः, काल इव निरनुकम्पाः, वरुण इव पाशहस्ताः,

सलिलमिव निम्नगामिन्यः, कृपण इवोत्तान हस्ताः, नरक इव उत्त्रासनीयाः, खर इव दुःशीलाः दुष्टाश्च इव दुर्दमाः, बाल इव मुहूर्त्तहृदयाः, अन्धकार इव दुष्प्रवेशाः, विषवल्लीव अनाश्रयणीयाः, दुष्टग्राहा वापी इव अनवगाह्याः, स्थानभ्रष्ट ईश्वर इव अप्रशंसनीयाः, किंपाकफलमिव मुखमधुराः, रिक्तमुष्टिरिव बाललोभनीयाः, मांसपेशीग्रहण मिव सोपद्रवाः, ज्वलितचुटिलीव अमुच्यमान दहनशीलाः, अरिष्टमिव दुर्लङ्घनीयाः, कूटकार्षापण इव कालविसंवादनशीलाः, चण्डशील इव दुःखरक्षिताः, अतिविषादाः, जुगुप्सनीयाः, दुरुपचाराः, अगम्भीराः, अविश्वसनीयाः, अनवस्थिताः, दुःखरक्षिताः, दुःखपालिताः, अरतिकराः, कर्कशाः, दृढवैराः, रूपसौभाग्यमदोन्मत्ताः, भुजगगतिकुटिलहृदयाः, कान्तारगतिस्थानभूताः, कुलस्वजन मित्र भेदनकारिकाः, परदोषप्रकाशिकाः, कृतघ्नाः, बलशोधिकाः, एकान्तहरणकोलाः, चञ्चलाः, ज्योतिर्भाण्डोपराग इव मुखरागविरागाः, अपि च ताः अन्तरङ्गभङ्गशतं, अरज्जुकः पाशः, अदारुका अटवी, अनलस्य निलयः, अनीद्या वैतरणी, अनामिको व्याधिः, अवियोगो विप्रलापः, अरूप उपसर्गः, रतिमान् चित्तविभ्रमः, सर्वाङ्गको दाहः, अनभ्रका वज्राशनिः, असलिलप्रवाहः, समुद्ररयः।

भावार्थ—अनेक प्रकार के सांसारिक बन्धनों के द्वारा जो बँधे हुए थे तथा कामानुराग से जो अत्यन्त मोहित थे ऐसे हजारों कवियों ने अपने अपने काव्यों में स्त्रियों का वर्णन विस्तार के साथ किया है परन्तु उनका वर्णन सत्य नहीं है। अतः स्त्रियों का यथार्थ स्वरूप बतलाया जाता है—

स्त्रियों का हृदय स्वभाव से ही वक्र (कुटिल) होता है। वे मधुर वचन बोलती हैं परन्तु उनका हृदय मधुर नहीं होता, जैसे वर्षा ऋतु में पहाड़ी नदियाँ बड़ी तेजी के साथ बहती हैं उसी तरह इनमें कपटमय प्रेम का प्रवाह बड़ी तेजी के साथ बहता रहता है। स्त्रियाँ शोक की उत्पत्ति का क्षेत्र है। स्त्रियाँ पुरुषों के बल को नाश करने वाली हैं और पुरुषों को वध करने के लिये वध्यशाला के समान हैं।

विद्वानो ने कहा है कि स्त्रियाँ दर्शन मात्र से चित्त को हर लेती हैं और स्पर्श करने से बल को हरण करती हैं तथा सङ्ग करने से वीर्य्य का हरण करती हैं। अतः स्त्रियाँ प्रत्यक्ष ही राक्षसी हैं। स्त्रियाँ लज्जा का नाश कर देती हैं। स्त्रियाँ अविनय की राशि और कपट तथा पाखण्ड के घर हैं। स्त्रियों के कारण जगत में वैर होता हुआ देखा जाता है इसलिये स्त्रियाँ वैर की खान हैं। स्त्रियाँ शोक का तो शरीर ही हैं। स्त्रियों के कारण मनुष्य कुल की मर्य्यादा का नाश कर देता है। एवं स्त्री के कारण मनुष्य अपनी संयम मर्य्यादा का भी नाश कर देता है। स्त्रियाँ राग और द्वेष के आधार हैं इनके कारण ही मनुष्यो में राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। स्त्रियाँ दुश्चरित्र के घर हैं। इनके कारण मनुष्य का चरित्र भ्रष्ट होजाता है। ये साक्षात् कपट की राशि हैं। इनके साथ अधिक संसर्ग होने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ध्वस हो जाता है। जो ब्रह्मचारी पुरुष इन स्त्रियो के साथ अधिक संसर्ग रखता है उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत अवश्य ही नष्ट होजाता है। अतः स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य्य को नष्ट करने वाली हैं। स्त्रियां श्रुत और चारित्र धर्म के विघ्न स्वरूप हैं। जो महापुरुष मोक्षमार्ग के पथिक हैं स्त्रियाँ उनके लिये तो महान् शत्रु हैं क्योंकि उनके चारित्र का नाश करने वाली हैं तथा उन्हें नरक आदि गतियो मे गिराने वाली हैं। जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम आचारों से सम्पन्न हैं, उन्हें स्त्रियाँ कलङ्कित कर देती हैं। जैसे बगीचे में पुष्पों का पराग अधिक होता है उसी तरह स्त्रियों के संसर्ग से पुरुषो में कर्मरूपी पराग अधिक होता है। इसलिये स्त्रियाँ कर्म रूपी पराग के लिये बगीचे के समान हैं। जैसे अर्गला लगा देने से द्वार बन्द हो जाता है इसी तरह स्त्री मे आसक्त होने से मोक्ष का द्वार बन्द हो जाता है। इसलिये स्त्रियाँ मोक्ष मार्ग के लिये अर्गला स्वरूप हैं। जैसे सर्प महान् क्रोधी होता है इसी तरह स्त्रियाँ भी अत्यन्त क्रोधिनी होती हैं। जैसे पागल हाथी अपने वश में नहीं होता है उसी तरह स्त्रियाँ काम के वशीभूत होती हैं। जैसे बाघिन का हृदय दुष्ट होता है, उसी तरह

स्त्रियों का हृदय भी दुष्ट होता है। जैसे तृणों से ढका हुआ कूप अप्रकाश युक्त होता है उसी तरह माया से ढका हुआ इन का हृदय पुरुषों के द्वारा जाना नहीं जाता है। जैसे मृग को पकड़ने वाला व्याध अनेक कपटो का प्रयोग करके मृग को पकड़ लेता है उसी तरह विविध प्रकार के कपटो का प्रयोग करके स्त्रियाँ पुरुषों को फँसा लेती हैं। स्त्रियों का हृदय किसी भी प्रकार से जाना नहीं जा सकता है। जैसे कण्डे की अग्नि दाहक होती है उसी तरह स्त्रियाँ भी पुरुष के अन्तः करण को दुःखाग्नि द्वारा जलाने वाली होती हैं। जैसे पर्वत का विषम मार्ग समतल नहीं होता है उसी तरह इनका हृदय भी सम नहीं होता है किन्तु विषम यानी अत्यन्त चञ्चल होता है। जैसे भुतो से ग्रस्त पुरुष का आचरण चञ्चल होता है, कहीं भी वह ठहरता नहीं है। इसी तरह इन स्त्रियों का चित्त भी किसी एक वस्तु पर स्थिर नहीं रहता है। जैसे दुष्ट व्रण के अन्दर का प्रदेश दूषित होता है उसी तरह इनका भी हृदय दूषित होता है। कृष्ण सर्प के तुल्य ही स्त्रियाँ भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

स्त्रियाँ अपने कपट को छिपा कर रखती हैं जैसे महामारी अपनी मारकशक्ति को छिपाये रखती है। सन्ध्याकाल में जैसे थोड़ी देर तक मेघों मे रक्त वर्ण उत्पन्न होता है, उसी तरह इनमें भी थोड़ी देर के लिये राग उत्पन्न होता। जैसे समुद्र की तरंगे स्वभावतः चञ्चल होती हैं इसी तरह स्त्रियो का चित्त भी स्वभावतः चञ्चल होता है। जैसे मछली को पीछे की ओर लौटाना सरल नहीं होता उसी तरह स्त्रियो को भी उनके हठ से निवृत्त करना सरल नहीं होता है। वानर के समान स्त्रियो का चित्त चञ्चल होता है। मृत्यु में और स्त्री मे कोई भेद नहीं है। जैसे दुर्भिक्षकाल दया से शून्य होता है अथवा सर्प जैसे निर्दय होता है उसी तरह स्त्रियाँ भी निर्दय होती हैं। जैसे वरुणदेव अपने हाथ मे पाश लिये रहता है, उसी तरह स्त्रियाँ पुरुषों को फँसाने के लिए सदा ही काम का पाश लिये रहती हैं। जल जिस तरह स्वभाव से ही नीचगामी होता है उसी तरह स्त्रियाँ भी नीचानुरागिणी होती हैं।

जैसे दीन जन सदा ही द्रव्य के लाभ से हाथ पसारे रखते हैं उसी तरह स्त्रियाँ भी सदा ही लोभ वश हाथ पसारे रहती हैं। दुष्ट कर्म करने वाली स्त्रियाँ सदा ही नरकवत् भय उत्पन्न करती रहती हैं। विष्ठा भक्षण करने वाले गर्दभ के समान स्त्रियों का आचरण दुष्ट होता है। दुष्ट घोड़ा जैसे वश मे नहीं किया जा सकता है उसी तरह स्त्रियाँ भी वश नहीं की जा सकती हैं। बालक की तरह इनका राग क्षणिक होता है। अन्धकार में प्रवेश करना जैसे कठिन होता है उसी तरह स्त्रियो के कपट पूर्ण व्यवहार को जानना कठिन होता है। विष की लता के समान ही स्त्रियाँ आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। दुष्ट ग्राह से सेवित बावड़ी जैसे प्रवेश के योग्य नहीं होती है उसी तरह स्त्रियाँ भी सेवन करने के योग्य नहीं हैं। अपने पद से भ्रष्ट ग्राम तथा नगर का स्वामी अथवा चारित्र से भ्रष्ट साधु अथवा उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाला आचार्य जैसे प्रशंसा के योग्य नहीं होता है उसी तरह स्त्रियाँ प्रशंसा के योग्य नहीं होती हैं। जैसे किंपाक वृक्ष का फल, खाते समय मधुर प्रतीत होता है परन्तु शीघ्र ही प्राण को हरण कर लेता है उसी तरह स्त्रियाँ विषय भोग करते समय मधुर प्रतीत होती हैं परन्तु परिणाम मे दुःख उत्पन्न करती हैं।

जैसे खाली मुट्ठी को देख कर बालक को लोभ उत्पन्न होता है उसी तरह स्त्रियो को देख कर अज्ञानी जीव ही लुब्ध होते हैं। जैसे किसी पक्षी ने कहीं मांस का टुकड़ा पाया हो तो दूसरे दुष्ट पक्षी उस मांस खण्ड को ले लेने के लिये बहुत उपद्रव करते हैं उसी तरह सुन्दर स्त्री के कारण नाना प्रकार के उपद्रव हुआ करते हैं। जैसे मछलियो के लिये मांस का ग्रहण उपद्रव युक्त होता है उसी तरह स्त्रियो का ग्रहण उपद्रव युक्त होता है। जैसे जलती हुई तृण की पूली जलाने वाली होती है उसी तरह स्त्रियाँ स्वभाव से ही जलाने वाली होती हैं। घोर पाप जैसे उल्लङ्घन करने योग्य नहीं होता है किन्तु उसका फल दुःख भोग करना ही पड़ता है उसी तरह स्त्री में आसक्त पुरुष को स्त्री द्वारा उत्पादित दुःख भोग करना ही पड़ता है। जैसे नकली पैसा समय पर धोखा देता है उसी

तरह स्त्रियाँ धोखा देती हैं। जैसे तीव्र क्रोधी को पास में रखना कठिन है उसी तरह स्त्रियों का रक्षण कठिन है। स्त्रियाँ दारुण विषाद के कारण हैं, अथवा अकार्य्य करने में स्त्रियों को जरा भी खेद नहीं होता है। कोई कोई अपने पति को विष देकर मार डालती हैं। जो पुरुष स्त्री मे अनुरक्त होता है उसकी दूसरे विषयों में भी आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। स्त्री में अत्यन्त आसक्ति होने से जीव की छठी नरक भूमि तक गति होती है। स्त्रियों को जब अपनी इन्द्रियो की तृप्ति के लिये विषय की प्राप्ति नहीं होती है तब उन्हें विषाद उत्पन्न होता है। कोई कोई स्त्रियाँ क्रोधित होकर स्वयं विपभक्षण कर लेती हैं। तीव्र पुण्य वाले मुनियों की दृष्टि मे स्त्रियाँ यमराज की तरह प्रतीत होती हैं। मुनिजन स्त्रियो से घृणा करते हैं। स्त्रियों की सेवा कठिन होती है। इनमें गम्भीरता नहीं होती है। स्त्रियाँ विश्वास के योग्य नहीं होती हैं। स्त्रियाँ एक पुरुष मे चित्त नहीं रखती हैं। युवावस्था मे इनका रक्षण करना कठिन है। बाल्यावस्था में इनका पालन भी कठिन है। इस लोक और परलोक में स्त्रियाँ दुःख उत्पन्न करती हैं। स्त्रियों के कारण संसार मे दारुण वैर की उत्पत्ति होती है। स्त्रियाँ रूप और सौभाग्य के गर्व से मत्त रहती हैं। सर्प की गति की तरह इनका हृदय कुटिल होता है। जहाँ व्याघ्र, सिंह और सर्प आदि हिंसक प्राणी निवास करते हैं ऐसे घोर जङ्गल में अकेले जाना और वहाँ निवास करना जैसे महान् भय को उत्पन्न करता है। उसी तरह स्त्रियों के साथ अकेले जाना या निवास करना दारुण भय का कारण होता है। स्त्रियाँ स्वजन तथा मित्रादि वर्ग में फूट उत्पन्न कर देती हैं। अन्य के दोष को झटपट प्रकट करती हैं। उपकार को नहीं मानती हैं। पुरुष के वीर्य्य का विनाश कर देती हैं। दुराचारिणी स्त्रियाँ जार पुरुष को विषय सेवन करने के लिये एकान्त में ले जाती हैं। जैसे जङ्गली सूअर किसी कन्द आदि भक्ष्य पदार्थ को पाकर उसे एकान्त में ले जाकर खाता है उसी तरह स्त्रियाँ भी एकान्त में पुरुषों का उपभोग करती हैं। इन स्त्रियो में अत्यन्त चञ्चलता होती है। जैसे अग्नि का पात्र अग्नि के संसर्ग से रक्त वर्ण होता है उसी तरह

अपने वश में कर लेती हैं एवं कितनी ही स्त्रियाँ वशीकरण विद्या द्वारा पुरुषो को अपने अधीन कर लेती हैं इसलिये वे 'योषित्' कहलाती हैं। वे अनेक प्रकार की चेष्टाओ द्वारा पुरुषों के मन मे कामाग्नि को प्रदीप्त करती हैं इसलिये 'वनिता' कहलाती हैं। कोई स्त्री पुरुषो के पतन के लिये उन्मत्त की तरह व्यवहार करती है। कोई पुरुषों को अपने पाश में फँसाने के लिये विलास के साथ प्रवृत्ति करती है और कामीजन को झुका लेती है। कोई शब्द पूर्वक श्वासरोगी की तरह अपनी चेष्टा दिखलाती है और इसके द्वारा पुरुषों को स्नेहयुक्त करना चाहती है। कोई अपने पति को भयभीत करने के लिये शत्रु की तरह प्रवृत्ति करती है। जैसे दरिद्र पुरुष दूसरे के पैरों पर पड़ता है उसी तरह कोई स्त्री कामातुर होकर पुरुषों के पैरों में गिर जाती है। कोई हास्य उत्पन्न करने के लिए वाणी और नेत्र को विकृत करती है। कोई कटाक्ष द्वारा अवलोकन करती हुई मूर्खों को पतित करती है। कोई विलास के साथ मधुर वचन बोल कर पुरुषों को मोहित करती है। कोई हास्यजनक चेष्टा द्वारा पुरुषो कों हास्य उत्पन्न करती है। कोई आलिङ्गन और लिङ्गग्रहण द्वारा पुरुष में अपना प्रेम दिखलाती है। कोई सुरतकाल में अत्यन्त मधुरध्वनि करती हुई कामियों के कामराग की वृद्धि करती है। कोई स्त्री अपने मोटे स्तन और विशाल नितम्ब आदि दिखा कर दूर रहने वाले पुरुष को भी वश में कर लेती है। स्त्रियाँ अपने गुरु जन को भी धोखा देकर अकर्तव्य में प्रवृत्त कर देती हैं। वे रुदन द्वारा पुरुष में स्नेह उत्पन्न करती हैं तथा अपने पिता के घर में जाने के अवसर पर पुरुष का राग अत्यन्त बढाती हैं। वे अपने दाँतो को दिखा कर पुरुषों को वशीभूत कर लेती हैं। वे रतिकलह द्वारा पुरुषो को रमण कराती हैं। वे शृङ्गार प्रधान गीत गाकर साधुओ को भी वश में कर लेती हैं। वे कज्जल, विकार तथा सजल नेत्रो द्वारा कामी पुरुष को मोहित कर लेती हैं। वह मोहित पुरुष उन स्त्रियों की गुलामी करने लगता है और इसके लिये अपराध का पात्र भी बनता है। स्त्रियाँ पैरो द्वारा पृथ्वी पर अक्षर लिखती हैं और स्वस्तिक आदि चिन्ह बनाती हैं। उनके द्वारा वे पुरुषो को अपने गोपनीय विषयों की

श्वासीव व्यवहरन्ति। काश्चित् शत्रुरिव, रोर इव काश्चित् पादयोः प्रणमन्ति, काश्चित् उपनतेषु नमन्ति, काश्चित् कौतुकं नमन्ति, काश्चित् सुकटाक्षनिरीक्षितैः सविलासमधुरैः उपहसितैः उपगूहितैः उपशब्दैः गुरुकदर्शनैः भूमिलेखनविलखनैश्च आरोहणनर्तनैश्च बालकोपगूहनैश्च अङ्गुलिस्फोटनस्तनपीडन कटितटयातनाभिः तर्जनाभिश्च, अपि च ताः पाशवत् व्यवसितुं, याः पङ्कवत् क्षेप्तुं, याः मृत्युरिव मारितुं, याः अग्निरिव दग्धुं असिरिवच्छेत्तुं याः ॥ १७ ॥

भावार्थः—जिनका स्वरूप पहले कहा गया है और आगे भी कहा जाने वाला है उन स्त्रियों मे जो अत्यन्त अधम दासी और दुराचारिणी स्त्रियाँ हैं उनके नामो की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है। अधम स्त्रियाँ पुरुषो को, जो उनमे आसक्त हैं, हजारों उपायो द्वारा वध और बन्धन का भाजन बनाती हैं, इसलिये उनके बराबर पुरुषो का दूसरा शत्रु न होने से वे 'नारी' कहलाती हैं। पुरुषो का स्त्रियो के तुल्य दूसरा शत्रु नहीं है इसलिये वे नारी कहलाती है। स्त्रियाँ विविध प्रकार के कर्म तथा शिल्प के द्वारा पुरुषो को मोहित कर लेती हैं इसलिये उन्हें 'महिला' कहते है। स्त्रियाँ पुरुष को पागल की तरह बना देती है इसलिये वे 'प्रमदा' कहलाती है। स्त्रियाँ महान् कलह उत्पन्न करती हैं इसलिये वे 'महिलिका' कही जाती हैं। वे हाव भाव आदि लीलाओ द्वारा पुरुषो को रमण कराती हैं इसलिये 'रामा' कही जाती है। वे अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों मे पुरुषो को आसक्त करती हैं इसलिये 'अङ्गना' कही जाती हैं। पुरुषगण स्त्रियो के कारण परस्पर मार पीट करते हैं, गालागाली करते हैं, परस्पर शस्त्र का प्रहार करते हैं, घोर जङ्गलों मे भ्रमण करते हैं, बिना प्रयोजन ऋण लेते है, सर्दी और गर्मी का कष्ट सहन करते हैं। इसी तरह वे अनेक प्रकार के क्लेशो का अनुभव करते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों को उक्त कार्यों मे प्रवृत्त करती है इसलिये वे 'ललना' कहलाती हैं। ललनाएँ कामातुर करके पुरुष को अपने वश में कर लेती हैं। वे अपने वचन, शरीर, हास्य और अङ्गविक्षेप आदि द्वारा तथा मन मे कामविकार उत्पादन द्वारा पुरुषों को

णारीओ, णाणाविहेहिं कम्मेहिं सिप्पियाईहिं पुरिसे मोहंतित्ति महिलाओ, पुरिसे मत्ते करंतित्ति पमयाओ, महंतं कलिं जणयंतित्ति महिलियाओ, पुरिसे हावभावमाईहिं रमंतित्ति रामाओ, पुरिसे अंगाणुराए करंतित्ति अंगणाओ, णाणाविहेसु जुद्धभंडण संगामाडवीसु मुहाण गिण्हणसीउण्ह दुक्खकिलेसमाईएसु पुरिसे लालंतित्ति ललणाओ, पुरिसे जोगणिओएहिं वसे ठावतित्ति जोसियाओ, पुरिसे णाणाविहेहिं भावेहिं वण्णतित्ति वणियाओ, काई पमत्तभावं, काई पणयं सविब्भम, काई ससद्दं सासिव्व ववहरंति, काई सत्तु व्व, रो रो इव काई पयएसु पणमंति, काई उवणएसु उवणमंति, काई कोउयणमंति, काई सुकडक्खणिरिक्खिएहिं सविलासमहुरेहिं उवहसिएहिं उवग्गहिएहिं उवसद्देहिं गुरुगदरिसणेहिं भूमिलिहण विलिहणेहिं य आरुहण णत्तणेहिं य बालय उवगूहणेहिं य अंगुलिफोडणथणपीलणकडितड-जायणाहिं तज्जणाहिं य अवि याइं ताओ पासो व ववसिउं, जे पंकुव्व खुप्पिउं, जे मच्चु व्व मरिउ, जे अगणिव्व डहिउं, जे असिव्व छिज्जिउं जे ॥ सूत्रं १९ ॥

छाया—अपि च तासां स्त्रीणां अनेकानि नामनिरुक्तानि, पुरुष कामराग प्रतिबद्धं नानाविधैरुपायसहस्रैः वध बन्धनमानयन्ति, पुरुषाणां नान्य ईदृशोऽरिरस्तीति नार्य्यः। नारी समाः न नराणा मरयः सन्तीति नार्य्यः। नानाविधैः कर्मभिः शिल्पकादिभिश्च पुरुषान् मोहयन्तीति महिला। पुरुषान् मत्तान् कुर्वन्तीति प्रमदाः। महान्त कलिं जनयन्तीति महिलिकाः। पुरुषान् हावभावादिभी रमयन्तीति रामाः। पुरुषान् अङ्गानुरागान् कुर्वन्तीति अङ्गनाः। नानाविधेषु युद्धभण्डनसंग्रामाटवीषु मुधार्णग्रहणशीतोष्णदुःखक्लेशादिषु पुरुषान् लालयन्तीति ललनाः। पुरुषान् योगनियोगैः वशे स्थापयन्तीति योषितः। पुरुषान् नानाविधैर्भावैः वर्णयन्तीति वनिताः। काश्चित् प्रमत्तभाव, काश्चित् प्रणत सविभ्रम, काश्चित् सशब्द

स्त्रियाँ वस्त्र और भूषण आदि के संयोग से राग उत्पन्न करने वाली यानी सुन्दरी प्रतीत होती हैं। स्त्रियाँ पुरुषों में परस्पर की मैत्री को विविध प्रकार से नष्ट कर देती हैं अथवा पुरुषों में ब्रह्मचर्य्य तथा चारित्र के प्रति जो राग होता है उसे अनेक प्रकार से नष्ट करती हैं। स्त्रियाँ बिना रस्सी का बन्धन हैं तथा वृक्ष आदि से शून्य घोर कान्तार यानी अटवीस्वरूप हैं अथवा काष्ठ रहित अटवी जैसे मृग-तृष्णा का कारण होती है उसी तरह स्त्रियां भ्रान्ति का कारण होती हैं अथवा जैसे काष्ठ रहित अटवी कभी जलती नहीं है उसी तरह स्त्रियाँ पाप करके पश्चात्ताप नहीं करती हैं। स्त्रियाँ पुरुष को अकर्तव्य करने मे प्रवृत्त कर देती हैं। स्त्रियां अदृश्य यानी जो देखने मे नहीं आती है ऐसी वैतरणी नदी हैं। स्त्रियाँ असाध्य रोग के समान पीड़ा देने वाली हैं। स्त्रियाँ माता पिता आदि के वियोग हुए बिना ही रुदन के समान हैं। स्त्रियाँ रूप रहित उपसर्ग हैं। स्त्रियाँ काम-भोग में सुख बुद्धि उत्पन्न करती हैं जो वस्तुतः भ्रान्ति है। स्त्रियाँ समस्त शरीर को जलाने वाली दाहनामक व्याधि हैं। स्त्रियाँ बिना मेघ के वज्रपात हैं। स्त्रियाँ चाहे विवाहित हों या अविवाहित हों, अलङ्कृत हो या अलङ्कार रहित हो, मुण्डित हों या अमुण्डित हों, किसी भी अवस्था मे हो, मोक्ष की इच्छा करने वाले ब्रह्मचारी मुनियों को सदा वर्जित करने योग्य हैं। स्त्रियाँ जलशून्य प्रवाह हैं। अतएव कामी जन बिना ही जल के इन में डूब मरते हैं। जैसे समुद्र के वेग को कोई भी सहन नहीं कर सकता, इसी तरह इनके उपद्रव को भी कोई सहन नहीं कर सकता है। स्त्रियाँ परमस्नेहियो को भी जुदा करा देती हैं।

अवि याइं तासिं इत्थियाणं अणेगाणि नामनिरुत्ताणि पुरिसे कामरागपडिबद्धे णाणाविहेहिं उवायसयसहस्सेहिं वह बंधणमाणयंति, पुरिसाणं नो अण्णो एरिसो अरी अत्थित्ति णारीओ, तंजहा णारीसमा न णराणं अरीओ

सूचना करती हैं। कोई बाँस पर चढ़ कर नाचती हैं, कोई पृथ्वी पर नृत्य करती हैं और इनके द्वारा पुरुषो में आश्चर्य उत्पन्न करती हैं। बिगड़ी हुई स्त्रियाँ गुप्त रूप से कामियों के साथ दोस्ती करके अपनी कामपिपासा को शान्त करती हैं। अथवा वे अपने केशों को विभूषित करके तथा स्वच्छ वस्त्रो को पहिन करके काम के गुलाम अधम पुरुषों को वश में करके उनके द्वारा बैल की तरह अपना कार्य्य कराती हैं तथा बन्दर की तरह कामियों को नचाती हैं। कोई कोई स्त्रियाँ स्वार्थ की पूर्ति न होने पर अपने प्राणों का भी त्याग कर देती हैं। स्त्रियाँ अपने अङ्ग और अङ्गुलियो का स्फोटन तथा स्तनो का पीड़न एवं नितम्ब का पीड़न, अपने हाथो से अथवा वक्रगति के द्वारा करती हैं और इनके द्वारा कामियो के चित्त को कम्पित करती हैं। कोई अपनी अङ्गुलियो को, मस्तक को तथा तृण आदि को चञ्चल करती हुई उनके द्वारा पुरुषो में काम पीड़ा उत्पन्न करती हैं। कोई वस्त्र भूषण आदि के द्वारा उज्ज्वल वेष बना कर तथा भूषणो का शब्द उत्पन्न करके एवं मार्ग में विलास के साथ गमन द्वारा तथा दूसरे भी विविध उपायो द्वारा पुरुषो को आकर्षित कर लेती हैं। इसलिये संयमधारियो को इनका सङ्ग सर्वथा त्याग देना चाहिये। इस ससार में बहुत बिगड़ी हुई स्त्रियाँ हैं, जो पुरुषों को नागपाश की तरह बन्धन में डालने के लिए प्रवृत्ति करती हैं। वे इस भव मे तथा परभव में पुरुषो के बन्धन का कारण बनती हैं। एवं पुरुषो को घोर कीचड में फँसा देती हैं। स्वच्छन्द आचरण करने वाली स्त्रियाँ मृत्यु की तरह अपने पति को मार डालने का प्रयत्न करती हैं। वेश्याएं अग्नि की तरह कामियों को जला देती हैं। युवती परिव्राजिकाए भी कई ऐसी होती हैं जो कपट करने मे बड़ी निपुण होती हैं और तलवार के समान साधुओं को छिन्न भिन्न करने मे प्रवृत्त रहती हैं।

असिमसि सारच्छीणं, कंतारकवाडचारय समाणं। घोर निउरंबकंदुरचलंत बीभच्छ भावाणं ॥ १२२ ॥

छाया—असिमषिसदृशाणां, कान्तारकपाट चारकसमानाम्। घोरनिकुरम्बकन्दर चलद् बीभत्स भावना ॥ १२२ ॥

भावार्थः—स्त्रियाँ तलवार के समान तीक्ष्ण और कज्जल के समान मलिन होती हैं। जैसे तलवार निर्दयता के साथ मनुष्यो को छेदन करती है, इसी तरह स्त्रियाँ मनुष्यो के लिए इस लोक तथा परलोक में दारुण दुःख उत्पन्न करती हैं। जैसे कज्जल श्वेत वस्तु को काला कर देता है, उसी तरह स्त्रियाँ कुलीन सदाचारी पुरुषों को कलङ्कित कर देती हैं। स्त्रियाँ गहन वन, कपाट तथा कारागृह के तुल्य होती हैं। जैसे गहन वन व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियो का आश्रय होने से भयदायक होता है, उसी तरह स्त्रियाँ पुरुषों के धन जीवन आदि के विनाश के कारण होने से भयदायक होती हैं। जैसे किसी मकान या गली का फाटक बन्द कर देने से उसके भीतर कोई प्रवेश नहीं कर सकता है। इसी तरह स्त्रियाँ धर्म रूपी मार्ग को बन्द कर देती हैं। अतः स्त्री में आसक्त पुरुषों का धर्म मार्ग में प्रवेश करना अशक्य है। जैसे कारागृह (जेल) में रहने वाले दुःख भोगते हैं। उसी तरह स्त्रियों में आसक्त जीव दुःख भोगते हैं। इसलिये स्त्रियाँ पुरुषों के लिए कारागृह के तुल्य हैं। स्त्रियो के हृदय का भाव कपट से परिपूर्ण होता है। वह इस प्रकार भयदायक है जैसे अगाधजल चलता हुआ भयङ्कर होता है। अतः बुद्धिमानों को इनका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १२२ ॥

दोस सयगागरीणं, अजससय विसप्पमाण हिययाणं। कइयव पण्णत्तीणं, ताणं अण्णायसीलाणं ॥ १२३ ॥

छाया—दोषशत गर्गरिकाणां, अयशः शतविसर्पद्हृदयाणाम्। कैतव प्रज्ञप्तीनां, तासा मज्ञातशीलानाम् ॥ १२३ ॥

भावार्थ—स्त्रियाँ सैकड़ो प्रकार के दोषों का घड़ा हैं। इनके हृदय में सैकड़ो बुराइयाँ चलती रहती हैं। इनका विचार कपट से पूर्ण होता है और बड़े बड़े विद्वान् भी इनके स्वभाव को नहीं जान सकते हैं ॥ १२३ ॥

अरणं रयंति अरणं रमंति, अरणस्स दिंति उल्लावं । अरणो कडग्रंतरिओ, अरणो पयडंतरे ठविओ ॥ १२४ ॥

छाया—अन्यं रजयन्ति अन्य रमयन्ति, अन्यस्य ददत्युल्लापं । अन्यः कटान्तरितः, अन्यः पटकान्तरे स्थापितः ॥ १२४ ॥

भावार्थ—कई स्त्रियाँ दो तीन या इससे भी अधिक पुरुषो के साथ प्रेम रखती हैं, एक को प्रेम के साथ देख कर काम उत्पन्न करती हैं और अन्य के साथ क्रीड़ा करती हैं एव तीसरे के साथ वार्तालाप करती हैं एव किसी को चटाई के पर्दे के अन्दर छिपा कर रखती हैं और किसी को कपड़े के पर्दे के अन्दर छिपा देती हैं। उनके दुराचार का ज्ञान जब होजाता है तब जानने वाले पति आदि को विष देकर मार डालती हैं। वे अपने भाव को समझाने के लिये अपने जार के सम्मुख पृथ्वी पर कुछ लिखती हैं अथवा तृण उखाड़ती हैं ॥ १२४ ॥

गंगाए वालुयाए, सायरे जलं हिमवओ य परिमाणं । उग्गस्स तवस्स गइं, गब्भुप्पत्तिं य विलयाए ॥ १२५ ॥
सीहे कुडंबुयारस्स, पुट्टलं कुकुहाईयं असे । जाणंति बुद्धिमंता, महिला हियंय ण जाणंति ॥ १२५ ॥

छाया—गङ्गाया वालुका, सागरे जलं हिमवतः परिमाणम् । उग्रस्य तपसः गतिं, गर्भोत्पत्तिश्च वनितायाः ॥ १२६ ॥
सिंहे कुण्डबुकारं, पुट्टलं कुकुहादिकमश्वे । जानन्ति बुद्धिमन्त, महिलाहृदयं न जानन्ति ॥ १२६ ॥

भावार्थ—गङ्गा नदी की बालुका को, समुद्र के जल को एवं हिमवान् पर्वत के परिमाण को बुद्धिमान् पुरुप जानते हैं, तथा तीव्र तपस्या का फल, स्त्री के गर्भ का बालक, सिंह के पीठ का बाल, अपने पेट के पदार्थ तथा गमन के समय अश्व का शब्द, इनको भी बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं परन्तु स्त्री के अन्तःकरण को नहीं जान सकते हैं।

एरिस गुणजुत्ताणं, ताणं कइयव्वसंठियमणाणं। ण हु मे वीससियव्वं, महिलाणं जीवलोगम्मि ॥ १२७ ॥

छाया—ईदृशगुणयुक्तानां, तासां कपिवदस्थितमनसाम्। न हि भवद्भिर्विश्वासितव्यं, महिलानां जीवलोके ॥ १२७ ॥

भावार्थ—ऐसे गुणो वाली स्त्रियाँ होती हैं। उनका मन वानर की तरह चञ्चल होता है। इसलिये इस जीवलोक में आप लोगो को स्त्रियो का विश्वास कदापि नहीं करना चाहिये ॥ १२७ ॥

निद्धण्णयं य खलयं, पुप्फेहिं विवज्जियं व आरामं। निद्दुद्धियं य धेणुं, लोएवि अतिल्लियं पिंडं ॥ १२८ ॥

छाया—निर्धान्यकञ्च खलकं, पुष्पैर्विवर्जितञ्चारामम्। निर्दुग्धिका च धेनुः, लोकेऽपि अतैलकं पिण्डम् ॥ १२८ ॥

भावार्थ—जैसे बिना अन्न का खल यानी अन्न के शोधन का स्थान एवं बिना पुष्प के बगीचा और बिना दूध की गाय तथा बिना तेल का पिण्ड शोभनीय नहीं होता है, इसी तरह स्त्रियाँ भी सुखहीन होने से अशोभनीय होती हैं ॥ १२८ ॥

जेणंतरेणं निमिसंति, लोयणा तक्खणं य विगसंति। तेणंतरे वि हिययं, चित्त सहस्साउलं होई ॥ १२९ ॥

छाया—येनान्तरेण निमिषन्ति, लोचनानि तत्क्षणञ्च विकसन्ति। तेनान्तरेण हृदयं, चित्तसहस्राकुलं भवति ॥ १२९ ॥

भावार्थ—जो प्रियतम स्त्रियो का स्वार्थ प्राणपण से पूरा करता है उसके बिना उसके प्रफुल्लित नेत्र सङ्कुचित होजाते हैं परन्तु जब वह उनका स्वार्थ सम्पादन नहीं करता है तब उसके बिना उसके नेत्र प्रफुल्लित होजाते हैं। जो स्त्रियाँ कुशीला होती हैं उनका चित्त अपने पति में कभी नहीं रहता है किन्तु हजारो अन्य पुरुषो में घूमता रहता है ॥ १२९ ॥

जड्डाणं वड्डाणं, निव्विण्णाणं निव्विसेसाणं। संसार सूयराणं, कहियंपि निरत्थयं होइ ॥ १३० ॥

पुस्तक मिलने का पताः—

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था,

रांगड़ी चौक, बीकानेर (राजपूताना)

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था,

ठंठारों की गवाड़, बीकानेर (राजपूताना)

आहारो उच्छ्वासो, संधि सिराओ य रोमकूवाइं । पित्तं रुहिरं सुक्कं, गणियं गणियप्पहाणेहिं ॥ १३७ ॥

छाया—आहार उच्छ्वासः सन्धिः, शिराश्च रोमकूपाः । पित्तं रुधिरं शुक्रं, गणितं गणितप्रधानैः ॥ १३७ ॥

भावार्थ—यह मनुष्य सौ वर्ष की आयु पाकर कितना अन्न खाता है तथा कितने श्वास लेता है और इसके शरीर में कितनी सन्धियाँ, कितनी नसें, कितने रोम कूप, तथा कितने पित्त, रक्त, और शुक्र होते हैं यह गणित करके पहले बता दिया गया है ॥१३७॥

एयं सोउं सरीरस्स, वासाणं गणियप्पागडमहत्थं । मुक्खपउमस्स ईहह, समत्तसहस्स पत्तस्स ॥ १३८ ॥

छाया—एतत् श्रुत्वा शरीरस्य, वर्षाणां गणित प्रकट महार्थम । मोक्षपद्मस्य ईहध्व, सम्यक्त्वसहस्र पत्रस्य ॥ १३८ ॥

भावार्थ—गणित के हिसाब से जिसका कार्य प्रकट कर दिया है ऐसे शरीर की आयु के वर्षों को सुन कर मोक्षरूपी कमल पुष्प के लिये प्रयत्न करना चाहिये.। उस मोक्षरूपी कमल के सम्यक्त्व ही सहस्र पत्ते हैं ॥ १३८ ॥

एयं सगड सरीरं, जाइ जरा मरण वेयणा बहुलं । तह घत्तह काउं, जे जह मुच्चह सव्वदुक्खाणं ॥ १३९ ॥

छाया—एतत् शकटशरीरं, जातिजरामरणवेदना बहुल । तथा गृह्णीत कार्यं, यदयथा मुच्चत सर्वदुःखेभ्य ॥ १३९ ॥

भावार्थ—यह शरीर जन्म, जरा, मरण और वेदनाओं से भरा हुआ एक प्रकार का शकट (गाडी) है । इस को पाकर ऐसा कार्य करो जिससे समस्त दुःखों से मुक्ति मिले ॥ १३९ ॥

इति 'तन्दुलवेयालियं' समत्त' ।



श्री रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, नसीराबाद रोड अजमेर ।

भावार्थ—धर्म ही अनर्थ का नाशक और अर्थ का सम्पादक है। धर्म ही रक्षक है; धर्म ही गति और आधार है। धर्म का भली-भाँति आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ १३३ ॥

पीइकरो वण्णकरो, भासकरो जसकरो य अभयकरो। निव्वुइकरो य सययं, पारित्त विइज्जओ धम्मो ॥ १३४ ॥

छाया—प्रीतिकरो वर्णकरो, भाकरो (भाषाकरो) यशस्करश्चाभयकरः। निवृत्तिकरश्च सतत, परत्र द्वितीयो धर्मः ॥ १३४ ॥

भावार्थ—धर्म प्रीति को उत्पन्न करता है, एक दिशा मे फैलने वाली कीर्ति उत्पन्न करता है अथवा शरीर मे उत्तम वर्ण उत्पन्न करता है, कान्ति उत्पन्न करता है, वचन की पटुता तथा मधुरता आदि गुणों को उत्पन्न करता है, समस्त दिशाओ में फैलने वाली कीर्ति उत्पन्न करता है, निर्भयता एवं कर्मक्षय रूप परमानन्द को उत्पन्न करता है तथा मनुष्यों को परलोक मे सदा सहायता करता है ॥१३४॥

अमरवरेसु अणोवमरूवं, भोगोवभोगरिद्धी य। विण्णाणणाणमेव य, लब्भइ सुकएण धम्मेण ॥ १३५ ॥

छाया—अमरवरेषु अनुपमरूप, भोगोपभोगऋद्धीश्च। विज्ञानज्ञानमेव च, लभ्यते सुकृतेन धर्मेण ॥ १३५ ॥

भावार्थ—विधिपूर्वक धर्माचारण करने से मनुष्य महान् ऋद्धि वाले देवताओ मे जाकर सुन्दर रूप तथा भोग, उपभोग, ऋद्धि और ज्ञान विज्ञान का लाभ करता है

देविंदचक्कवट्टित्तणाइ, रज्जाइं इच्छिया भोगा। एयाइं धम्मलाभा, फलाइं जं चावि निव्वाणं ॥ १३६ ॥

छाया—देवेन्द्रचक्रवर्तित्वानि, राज्यानि ईप्सिता भोगाः। एतानि धर्मलाभात्, फलानि यच्चापि निर्वाणम् ॥ १३६ ॥

भावार्थ—देवेन्द्र पद, चक्रवर्त्ती पद, राज्य, ईप्सित भोग, ये सब धर्माचरण के फल हैं तथा निर्वाण भी इसी का फल है ॥ १३६ ॥

छाया—जडानां वृद्धानां, निर्विज्ञानानां निर्विशेषाणाम् । संसारशूकराणां, कथितमपि निरर्थकं भवति ॥ १३० ॥

भावार्थ—जो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से मूर्ख हैं, जो अत्यन्त वृद्ध हैं, जो विशिष्ट ज्ञान से हीन हैं, जो विशेष (भेद) को नहीं जानते हैं, ऐसे जो लोग सांसारिक विषयो में शूकर की तरह आसक्त हैं उनके प्रति अच्छी शिक्षा देना निरर्थक होजाता है ॥ १३० ॥

किं पुत्तेहिं पियाहिं वा, अत्थेणवि पिंडएण बहुएणं । जो मरणदेसकाले, न होइ आलंबणं किंचि ॥ १३१ ॥

छाया—किं पुत्रैः पितृभिर्वा, अर्थेनाऽपि पिण्डितेन बहुकेन । यद् मरण देशकाले, न भवत्यालम्बनं किञ्चित ॥ १३१ ॥

भावार्थ—पुत्र, पिता अथवा बहुत सग्रह किये हुए धन से ही क्या लाभ है ? जो मरण समय उपस्थित होने पर कोई भी सहायक नहीं होता है ॥ १३१ ॥

पुत्ता चयंति मित्ता चयंति, भज्जा वि णं मयं चयइ । तं मरणदेसकाले, न चयइ सुविअज्जिओ धम्मो ॥ १३२ ॥

छाया—पुत्रास्त्यजन्ति मित्राणि त्यजन्ति, भार्यापि मृतं त्यजति । तस्मिन् मरणदेशकाले, न त्यजति सुव्यर्जितो धर्मः ॥ १३२ ॥

भावार्थ—जब मरणकाल आजाता है तब प्राणी को पुत्र, मित्र और स्त्री सभी छोड़ देते हैं, एक धर्म ही ऐसा है जो भली भाँति आचरण किया हुआ नहीं छोड़ता है ।

धम्मो ताणं धम्मो सरणं, धम्मो गई पइट्ठा य । धम्मेण सुचरिएण य, गम्मइ अयरामरं ठाणं ॥ १३३ ॥

छाया—धर्मस्त्राणं धर्मः शरणं, धर्मो गतिःप्रतिष्ठा च । धर्मेण सुचरितेन च, गम्यतेऽजरामर स्थानम् ॥ १३३ ॥

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. वृत्तबोध (संस्कृत छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थ)	मूल्य ≡)
२. जैनागम तत्त्वदीपिका (प्रश्नोत्तर के ढंग से जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ)	।≡)
३. श्रीलाल नाममाला (प्रारम्भिक संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए जैन पद्धति से रचा हुआ संस्कृत कोष)	।)
४. आलोयणा (विस्तार सहित)	(अप्राप्य)
५. श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० का जीवन चरित्र प्रथम भाग	४)
६. जवाहर विचार सार (श्रीमज्जवाहराचार्य के जीवन चरित्र का दूसरा भाग)	२)
७. तन्दुल वयालीय पइण्णा (गर्भ विषयक विचार का विस्तृत वर्णन)	१।।।)
८ श्री जिन जन्माभिषेक (तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म कल्याणक का विस्तृत वर्णन)	(छप रहा है)

प्राप्तिस्थान

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था,
रांगड़ी चौक, बीकानेर

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर